UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180110

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H88 S61J Accession No. P. G H741

Author सिंह, रघुवीर.

Title जीवन-धूलि. ५.८.

This book should be returned on or before the date last marked below.

जीवन-धूलि

काव्य कण—४

जीवन-धूलि

[गद्य-काव्य]

डा० रघुवीरसिंह

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

मूल्य डेढ़ रुपया

राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस दिल्ली से मुद्रित।

मेरी पूज्या माता

को

सादर, सप्रेम समर्पित

सूची

१.	यौवन की देहली पर	---	६
२.	जीवन के द्वार पर	---	१३
३.	यौवन की ख़ुमारी	---	२६
४.	कब का खड़ा पन्थ निहारूँ	---	३२
५.	आदेश	---	३६
६.	क्या पुनः गीता का सन्देश न सुनाओगे ?	---	३६
७.	अतीत-स्मृति	---	४४
८.	वह प्रवाह	---	५०
६.	वह सौन्दर्य	---	५२
१०.	उसका कारण	---	५४
११.	दो बातें	---	५५
१२.	निराशा	---	५६
१३.	दुराशा	---	५७
१६.	बिखरे फूल	---	५६
१५	आशा	---	६१
१६.	पथिक ! क्या रात-भर भी न ठहरोगे	---	६३
१७.	इस अँधेरी रात में किधर चले ?	---	६५
१८.	परदेसी ! तुम क्या जानो प्रीत की रीत ?	---	६६

एक

यौवन की देहली पर

जल उठा स्नेह दीपक-सा
नवनीत हृदय था मेरा;
अब शेष धूमरेखा से
चित्रित कर रहा अन्धेरा।—'प्रसाद'

बाल्यकाल बीत चुका है। साथ ही स्वर्गीय भोलेपन ने विदा ले ली। वह स्वाभाविक चुलबुलाहट, अज्ञान-जन्य साधारण परन्तु रुचिकर प्रश्नावली, संसार-ज्ञान के प्रति वह अतृप्त जिज्ञासा, सर्वदा के लिए भूत के गर्भ में विलीन हो गई। मानसिक शान्ति, भविष्य का आशापूर्ण दृश्य, ये भी अब धीरे-धीरे मस्तिष्क-मंच से प्रस्थान करने लगे हैं।

जीवन का प्रथम सोपान चढ़ चुका हूँ। प्रारम्भिक बातों में से बहुत-सी तो पहले ही से छूट गई हैं। उमड़ता हुआ यौवन मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। उसका स्वरूप कितना आकर्षक और मनोहारी है! वह सभी सुखों का देने वाला प्रतीत होता है। मैं उसकी ओर दौड़ा जा रहा हूँ।

पर, आह! मेरे हृदय में अशान्ति की ज्वाला-सी धधक उठी है। उसकी लपकती हुई लपटें मेरी आकांक्षाओं, विचारों तथा सुखों को भस्म करने को आगे बढ़ रही हैं। अरे! इन लपटों का स्वरूप कितना नयनाभिराम है!

नवीन उत्साह समुद्र की भाँति उमड़ रहा है। आगामी जीवन का मार्ग साफ प्रतीत हो रहा है। सुनते हैं कि जैसा यह स्पष्ट दीख पड़ता है, वैसा भयानक भी है। पग-पग पर गंभीर गह्वर मुँह बाए हुए खड़े हैं। मार्ग कंटकविकीर्ण है और स्थान-स्थान पर घोर संकट उपस्थित हो जाते हैं; परन्तु क्या यह आपदाएँ मेरे उत्साह को तनिक भी भंग कर सकेंगी ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं इन सभी कठिनाइयों को पार करूंगा।

किन्तु, क्या इन बाधाओं को अभिभूत करके भी उत्साह का प्रवाह उमड़ता ही रहेगा ?

अरे ! यह क्या हो गया ? मेरे मस्तिष्क की विचित्र दशा है। भीषण संग्राम मचा हुआ है। सोचता था कि अपने मस्तिष्क के बल पर समग्र संसार को उलट-पुलट कर दूँगा ; पर यहां तो इस नवीन जीवन के फलस्वरूप कई कठिन समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं। उन्हें सुलझाने के लिए मेरा मस्तिष्क दिन-रात प्रयत्न करता है किन्तु फिर भी वे सुलझाये सुलझती नहीं। अगर इन कठिन समस्याओं ही का सामना करना होता, तो मस्तिष्क को कभी की सफलता प्राप्त हो चुकी होती; परन्तु मस्तिष्क को तो निरन्तर ही हृदय का भी सामना करना पड़ रहा है। भोले-भाले हृदय ने भी विद्रोह कर दिया है; साथ ही उद्दाम वासनाएँ भी प्रचंड हो चली हैं। हृदय में जो भीषण दावानल जल उठा है, वह हृदय को ही नहीं, मस्तिष्क को भी खाक में मिलाने को प्रयत्नशील है। इस प्रचण्ड दावानल को धधकाने में सहायता देने वाली वासनाएँ मोह की आहुतियों से इसे और भी प्रज्वलित कर रही हैं; अतः दावानल ने भी भयंकर रूप धारण किया है, भीषण प्रचण्डता के साथ वह धधक रहा है।

आह ! क्या इस दावानल को हृदय में रखकर भी मैं जीवित रह सकता हूँ ? प्रकृति ने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है। बाल्यकाल ने बड़े ही लाड़-प्यार से पाला-पोसा है, किन्तु उसने कभी इस हृदयाग्नि की चिता में बैठकर सुरक्षित रहने का कोई भी उपाय न बतलाया।

धाँय ! धाँय ! करती हुई अग्नि जल रही है। प्रत्येक श्वास के साथ उसकी गरम लपटें बाहर निकली पड़ रही हैं। हृदय लगातार उस दावानल पर रुधिर-रूपी पानी बहा रहा है ; समझता है कि हृदयाग्नि इसी प्रकार शान्त हो जायगी; परन्तु नहीं, यह रुधिर घृत से कम नहीं है, वह उसे और भी प्रज्वलित करता है। हृदय क्या है ? श्मशान-भूमि। विचारों, उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं और पवित्र भावों की चिताएँ धधक रही हैं। उनसे निरन्तर निकलने वाली लपटें इस ईंधन को पाकर और भी प्रचण्डता धारण करती हैं। जो कुछ सामने पड़ जाता है, उसे भस्मीभूत करती हुई बढ़ रही हैं। बाल्यकाल की चुलबुलाहट, भोलापन, सौकुमार्य आदि इस अग्नि में आहुति बन चुके और भस्म होकर भी अपनी खाक से उन्होंने निश्वास, अविश्वास, निराशा तथा अवज्ञा को जन्म दिया।

आह ! यह अग्नि कब तक जलेगी ? शान्ति कब प्राप्त होगी ? शान्ति-पिपासा दिनों-दिन बढ़ रही है ; परन्तु पशुता तथा वासनाओं की प्रचण्डता का झोंका सहन न कर सकने के कारण मस्तिष्क स्तब्ध तथा हत-चेतन हो गया है। हृदय में जलते हुए दावानल की लपटों ने उसे दग्ध कर दिया है। इस अर्द्ध चेतनावस्था में शान्ति को वह मृग-मरीचिका की भाँति खोज रहा है। मार्ग अदृश्य हो गया है, बार-

बार इधर-उधर गिरता-पड़ता, भटकता चला जाता है। मृग-तृष्णा सदैव धोखा देती है। जल के लहराते हुए तालाब के स्थान में अग्नि की ज्वाला क्या कुछ कम धोखा है? मोह-मदिरा शान्ति-सुधा की भाँति प्रतीत होती है। वह पीता है और प्यास बुझाने के स्थान में उसे वह अधिकाधिक प्रज्वलित कर लेता है।

इधर दावानल का स्वरूप प्रचंड होता जाता है। ज्ञात नहीं, कब शान्त होगा। मार्ग की यह दशा—कंटकाकीर्ण, विषम और संकटमय! क्या शान्ति-सुधा की प्राप्ति स्वप्न-मात्र है? इस दावानल का बुझना क्या असंभव है?

यौवन की देहली पर खड़ा हूँ। परिस्थिति अभी से भीषण हो चुकी है। संसार अपने स्वप्न में अनुभव करता है कि यौवन ही मानव-जीवन का सबसे सुन्दर भाग है; परन्तु मेरी अवस्था इस कथन का प्रमाण नहीं है।

कब तक उस शान्ति-सुधा की खोज करनी होगी? कब तक यह दावानल जलता रहेगा? किस-किसकी आहुति इसमें और पड़ने वाली है? जब यौवन की देहली पर ही यह अवस्था है, तो आगे 'कवन हाल'!

किधर जा रहा हूँ? कहाँ वह शान्ति-सुधा प्राप्त हो सकेगी? धू-धू! अब नहीं रहा जाता। धू! धू!! आह! कब तक सहना होगा? धाँय-धाँय करती हुई हृदयाग्नि की लपटें बढ़ती हुई चली आ रही हैं। आह! कब तक? कब तक?? कब तक???

दो

जीवन के द्वार पर

मानव-सागर के तट पर,
क्यों लोल लहर की घातें ?
कल-कल ध्वनि से हैं कहती,
कुछ विस्मृत बीती बातें।—'प्रसाद'

यों तो भौतिक जीवन में प्रवेश किये बहुत दिन बीते। कई वर्ष हो गए, जब मैंने इस पार्थिव संसार में पदार्पण किया था। किन्तु आज सचमुच मैं अपने जीवन के द्वार पर खड़ा हूँ। आज ही मैं अपने जीवन के द्वार पर आ गया; अब मैं एक नवीन मार्ग पर पदार्पण कर रहा हूँ। यह स्फूर्ति मुझे कैसे हुई? क्योंकर मैं इस सत्य को—यदि यह सत्य है तो—जान पाया, यह बात मेरे ही लिए एक पहेली है। शीघ्र ही मैं एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर हूँगा, मुझे एक दूसरे—अब तक अपरिचित—संसार की हवा खानी होगी। ऐसा मैं क्यों विचारने लगा, किस प्रकार यह मेरे मस्तिष्क में प्रविष्ट हुआ? इसका रहस्य मेरे लिए भी एक पहली ही है। यदि सच पूछा जाय, तो अबोध बालिका के समान मेरी बुद्धि अब भी इसी विचार के कूल पर खेल रही है। मेरे परिवर्तन का सूत्र एक अज्ञात शक्ति के अधीन है। कहाँ, कैसे, क्यों और किस बात में यह परिवर्तन निरन्तर हो रहा है—यह समस्या मेरे सम्मुख निरुत्तर प्रश्न-सी है। केवल मेरे मस्तिष्क में यह भावना उठती है, और मेरे हृदय का स्पन्दन प्रकट करता है कि कोई

नई दुनिया सामने है, जिसका अनुभव अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसी मानसिक अनुभूति ने मुझमें नवीनता की विद्युत्-सी लहर उत्पन्न कर दी है।

नवीन जीवन के आगमन ने समय की वेदी पर पुरानी प्रवृत्तियों का बलिदान कर दिया। मैंने इतने वर्षों तक एक ऐसे मार्ग को तय किया है, जो अब भी अज्ञात है; न तो मैंने उसे पहचाना और न अब इच्छा होते हुए भी उस पर लौट सकता हूँ। वह मार्ग समाप्त हो गया और नये ने दर्शन दिये। कुछ लोगों की धारणा होती है कि इस नवीन वातावरण में प्रवेश करते ही प्राचीन स्मृतियाँ निस्तेज होकर लुप्त हो जायंगी; अतः यह नवीनता मुझे पूर्व जीवन का सिंहावलोकन करने के लिए उत्सुक बना रही है। पुनः अननुभूयमान और पुनः अपरिक्रम्यमाण यह मार्ग आज एक बार पुनः अवलोकन करने के लिए मेरे हृदय को अपनी ओर आकर्षित करता है।

अभी तक नवीन जीवन-पथ पर पदार्पण न करने के कारण वे पुराने संस्कार, वह प्राचीन संसर्ग मुझसे—मेरे मस्तिष्क से—दूर नहीं हुए हैं। नहीं जानता कि आगे बढ़कर अपने इस विगत जीवन के प्रति मेरा क्या भाव होगा। आज तो उससे विदा लेने में हृदय को वेदना होती है, और वियोग का सुअवसर दुखद हो रहा है। कम-से-कम आज तो अपने विगत जीवन के प्रति मेरा प्रेम उद्वेलित हो रहा है। यह मैं पूर्णतया जानता हूँ कि उस जीवन से पुनः सम्मिलन नहीं होगा, यह चिरवियोग है; अतः इस अवसर पर दिल से आह निकल पड़ती है। इस वियोग पर आज मुझे जो दुख हो रहा है उसका कब अन्त होगा—यदि अन्त हो सकता है—यह मुझे ज्ञात नहीं है; किन्तु आज मैं अपने आँसुओं से इसका पाद-प्रक्षालन किये बिना इसको न

छोड़ूंगा। प्रेमियों के वियोग पर, तथा एक के चले जाने पर जहाँ तक दृष्टि से वह ओझल नहीं हो जाता, या दूसरे को विवश होकर अपनी राह नहीं पकड़नी पड़ती, वहाँ तक उसे देख-देखकर आंसू बहाने वाले प्रेमी का-सा हाल आज मेरा भी हो गया है।

अपने पुराने जीवन-पथ के छोर पर खड़ा, मैं उस जीवन की ओर बिना एक दृष्टि डाले नहीं रह सकता। सम्भव है नवीन जीवन की देहली पार करते ही यह दृश्य मेरी आंखों से सर्वदा के लिए छिप जाय, इस विचार से उस द्वार के भीतर घुसने से पहले ही उसे आँख भर कर देखता हूँ; अपने उन दिनों का स्मरण करता हूँ, जब पसीना गुलाब था।

मैं कहाँ से आया हूँ? किस पथ पर अब तक भ्रमण कर रहा था? अब आगे कौनसा मार्ग पकड़ना है? आगे का पथ कैसा है? वह किधर पहुँचायगा? ये सब कठिन प्रश्न हैं, जिन्हें मेरा सुकोमल विकसित होता हुआ मस्तिष्क असाध्य समस्या समझता रहा है। पूर्णतया विकसित और ज्ञान-वृद्ध मस्तिष्क वाले भी सारे जीवन-भर इन अगम पहेलियों को सुलझाने का प्रयत्न करते आये हैं; परन्तु उनका यह भगीरथपरिश्रम अभी तक निष्फल ही सिद्ध हुआ है। वे इन प्रश्नों का उत्तर निरुत्तर, मूक रहकर देते हैं, जो असंतोष-प्रद और व्यर्थ है। अपने जीवन के प्रारम्भ की अन्ध किसी भी बात का मुझे कुछ भी भेद ज्ञात नहीं और न मैंने उस मार्ग की पार्श्ववर्ती भूमि का सौंदर्य ही देखा है। मैं नहीं जानता कि वह कौनसा सम्मोहनास्त्र था, जिसने मुझे अपने ऊपर सवार कराकर बिजली की-सा तेजी से सहसा यह मार्ग पार करा दिया। अथवा, किस अभौतिक पट्टी ने मेरी

इन भौतिक आँखों पर ऐसा अधिकार जमाया कि पुष्प को दिखाकर उसके रहस्य को छिपा दिया। हाँ, ज्यों-ज्यों समय बीतता था, ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, स्वभाव-दृश्य इन विभूतियों में आँखों पर से अंचल सरक रहा था।

उस समय कठपुतली सजीव थी, मैं अपने को उसका सहचर मानता था। समय अपने हाथों में मुझे भी आज की नाईं कठपुतली बनाये हुए था। आरम्भ में न तो दूसरे व्यक्तियों का ज्ञान था और न अपने व्यक्तित्व ही का। मैं नहीं जानता था कि अन्य व्यक्तियों की भाँति मुझमें भी व्यक्तित्व है। मैं संसार से पूर्णतया अजान था; परन्तु अन्त में समय ने जादू की लकड़ी फेरी; मेरी बुद्धि फिरी, और देखो! मैं व्यक्तित्व-युक्त हो गया; परन्तु वह समय—वह स्वर्णमय दिन—अब कहां है, जब मैं अनभिज्ञता की मूर्ति बना हुआ था; लोग आते थे, जाते थे, मुझसे बोलते थे, मुझे हँसाते थे; परन्तु वे कौन थे, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था, उनका परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा भी मुझमें न थी। उस समय मैं ऐसा सुखी था कि संसार में कोई भी मनुष्य दुखी नहीं कर सकता था। किसी कारण यदि मैं कुछ तृष्ण हो जाता, रोने लगता, तो कुछ ही काल में वह रोना-धोना कपूर की भांति अनजाने ही लोप हो जाता।

परन्तु क्रूर काल मेरा यह सब सुख क्यों देखने लगा? वह जीवन की घाटी पर मुझे उत्तरोत्तर ढकेले ही गया। समय बीतता जाता था, मुझमें भी निरन्तर परिवर्तन होता जाता था। मेरे सुख की मात्रा घटने लगी। यदि किसी कारण से ठेस लगती, तो अब वह अधिक देर तक दर्द करती। अब मेरे हृदय में न जाने कैसा असन्तोष,

न जाने किस वस्तु का अभाव प्रतीत होने लगा। किस प्रकार यह असन्तोष मिटे ? किस वस्तु का अभाव है ? इसका ज्ञान मुझे न था। मेरी दशा कटे हुए पतंग की-सी हो गई। वह असन्तोष—और उसका वह झोंका, वह अभाव—और उसका यह भाव—मुझे न जाने कहां-कहां भटकाता था। मेरे माता-पिता ने मानव-मनोविज्ञान के शस्त्रागार से एक अस्त्र निकाल एक तदबीर सोची, जो बहुत पुरानी है। मेरे लिए रंग-बिरंगे भांति-भांति के खिलौने, घोड़े-हाथी और पुतले-पुतली तक लाये। ये खिलौने बड़े ही मनोरंजक, बहुत ही अनोखे और अतीव सुन्दर थे। मेरे हृदय को संतोष हुआ, मैं उनमें रम गया। दुःख का क्षणिक नाश हुआ, अभाव की कुछ-कुछ पूर्ति हुई। समय पहले ही से भुलावे दे रहा था और खिलौने भी उसके सहायक हो गए। खेल में रम गया। आंख खोलकर जब देखा, तो तीन-चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

अचानक मैं एक दिन चौंक पड़ा। खेलते-खेलते ज्योंही मैंने अपने चारों ओर दृष्टि फेंकी, मुझे संसार और उसके साथ, सारी प्रकृति एक नवीन परिधान में दिखाई दी। सारे संसार की वस्तुओं का बाना बदल गया। वे खिलौने—वे रङ्गदार सुन्दर खिलौने—भूल गए। संसार को मेरी दृष्टि स्तब्धता के साथ देखने लगी।

संसार ने मेरे ध्यान को आकर्षित करने में कोई कोर-कसर न रखी। जब जिज्ञासा मूर्तिमती हो गई, हृदय में एक प्रकार की पिपासा उत्पन्न हुई। मैं पुनः अधीर हो उठा। इस अधैर्य के समुद्र में बहते-बहते थकने से बचाने के लिए पुस्तक की पतवार हाथ आई। आंखें पुस्तकों में गड़ गईं ; परन्तु हृदय और भी उखड़ा, संसार को जानने

की उत्कट अभिलाषा और उसके समान ही अनुवर्तन करने की विकट इच्छा, हृदय में उमड़ने लगी। पुनः खिलौने मिले; परन्तु इस बार उनका रूप ही परिवर्तित था। इस बार का खेल वह पुराना खेल न था, यह था कठपुतलियों का खेल। मैंने मानव-जीवन का अनुवर्तन प्रारम्भ किया। आह! यह जीवन कैसा है? मनुष्य के भिन्न-भिन्न कार्यों का अंतिम तात्पर्य क्या है? इन प्रश्नों से मेरा कुछ भी संपर्क न था। मैं तो अनुकरण में लीन था। अनेक बार मुझे अनुकरणशील देखकर मेरे माता-पिता हँसे। अनेक बार उनके वात्सल्य ने मेरी उत्साहवर्द्धक प्रशंसा की, मैंने भी अनुकरण-चातुर्य की शेष सीमा दिखाने में कसर न रखी। उस समय यह किसको ज्ञात था कि आज का वह मेरा खेल, कल एक बेढब पहेली हो जायगा। आज जो खेल मुझे मनोरंजन प्रदान कर रहा है, वही कल को एक चिन्ताजनक, एक उलझी हुई समस्या हो जायगा।

निदान वे दिन भी व्यतीत हुए, समय ने फिर एक पल्टा खाया। मेरे जीवन ने भी एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर होने की ठानी। वे पुराने खिलौने, वे सुन्दर पुतलियाँ, काठ और लोहे की बनी हुई प्रतीत होने लगीं। बारह वसंतों को बिताकर मुझे ज्ञात होने लगा कि वसन्त भी एक ऋतु है। प्राकृतिक दृश्यों का अर्थ मैं आनन्द के कोष में देखने लगा।

सांसारिक जीवन ने मुझे इतना मुग्ध कर लिया कि मैं मृग-मरीचिका को भी कल्लोलित तरंगों से भरी हुई देखने लगा। इस मनोरम जलाशय में न तो कहीं खिलौने तैरते हुए दिखाई पड़ते थे और न पुतलियाँ ही डुबकी लगाती थीं। अभी तक मुझे ज्ञात था कि वे

खिलौने, वे पुतलियाँ जीवन का अभिनय करती हैं ; परन्तु अब तो मैं ही संसार के रंग-मंच पर अपना अभिनय करने को उत्सुक हो गया। मुझे अब ज्ञात हो गया कि जो कुछ चमकता है, वह केवल हीरा ही नहीं है, काच भी हो सकता है। जो कुछ सौन्दर्य संसार में है, वह उतना ही सुन्दर नहीं है जितना कि मुझे पहले प्रतीत होता था। वह असुन्दर भी है—फूल ही नहीं है, काँटे भी हैं। जो अग्नि पहले इतनी नयनाभिराम लपटों से आनन्द देती थी, अब उसकी जलाने की शक्ति का भी अनुभव होने लगा। परन्तु भावुक अब भी कहते हैं—अच्छा ही हुआ कि उस समय सुख और शान्ति से युक्त जीवन को, इस समय के दुःख और अशान्ति के ये हाथ नहीं छू पाये थे।

वे भी दिन थे, जब मुझे समय से बड़ी शिकायत थी। मैं बार-बार उससे प्रश्न करता था कि तू जल्दी-जल्दी क्यों नहीं बीत जाता। तब भी वह निष्ठुर प्रतीत होता था, और आज भी उसकी निष्ठुरता में न्यूनता नहीं प्रतीत होती, वरन् अधिकाधिक निष्ठुर होता जाता है। इसने मुझे उस सुखमय जीवन से निकालकर सांसारिक जीवन की इस विचित्र धारा में डाल दिया। मैं अपने खिलौनों से बहुत-कुछ प्यार करता था ; पर यह निष्ठुर काल मुझे जीवन की अधिक स्पष्ट कठिनाइयों की ओर खींच ही लाया। अब मुझ पर सांसारिक रंग और भी अधिक तेजी से चढ़ने लगा।

मैं सांसारिक जीवन में अवतीर्ण होने के लिए व्यग्र हो उठा। अब मेरे उद्देश्यों में, रहन-सहन में, रंग-ढंग में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। मैं यह चाहने लगा कि संसार में कोई भी अब मुझे बालक न समझे। मेरी गिनती बड़े-बूढ़ों में हो, हँसकर कोई मेरे कथन का तिरस्कार न करे, बालक मुझे आदर की दृष्टि से देखें आदि-आदि भावनाएँ

मेरे हृदय में उठने लगीं ; परन्तु प्रति-क्षण मुझे प्रतीत होने लगा कि मेरी इच्छाओं का यत्किंचित् भी पूर्ण होना असम्भव है। जहाँ देखता था, वहीं मेरा तिरस्कार मेरे आगे खड़ा था। उस समय मेरे हृदय पर क्या बीतती थी, मेरे कोमल भावों को कैसी ठेस लगती थी, यह मेरे अतिरिक्त कौन जान सकता था। अपने प्रति किये गए इन अत्याचारों से मैं तिलमिला उठता था। मैं समय के प्रति क्रोध की दृष्टि से देखने लगता था। मैं चाहता था कि कुछ वर्ष क्षण में बीत जायं, जिससे मेरी इच्छाओं को सफल होने का अवसर प्राप्त हो। उस समय क्या जानता था कि तवे पर से आग में कूदने की तैयारी कर रहा हूँ। मुझे ज्ञात न था कि जिसे मैं फूलों की सेज समझ रहा हूं, वह जलते हुए अंगारों की शय्या है।

उसी समय मेरे जीवन के रंग-मंच पर पुनः पट-परिवर्तन हुआ। हृदय ने भी करवट बदली। आजतक मेरा हृदय एक प्रकार से संसार से उदासीन ही रहता था। उसमें संसार के प्रति एक अज्ञात सुख के सिवा और कोई भाव न था ; किन्तु अब उसमें भी एक प्रवाह उमड़ पड़ा। बालू के ढेर से स्नेह का स्रोत-सा बहता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। मेरे हृदय के नीरस आंगन में प्रेम की हरियाली छा गई। मैंने देखा कि अब मैं अन्य व्यक्तियों के प्रति आकृष्ट होने लगा। विश्व के प्रति एक नवीन प्रेम की भावना उमड़ पड़ी, परन्तु इस कठोर भाव-हीन विश्व ने मेरे प्रेम को उचित रूप से संचित न किया। भौतिक संसार में सफलतापूर्वक विचरनेवाले व्यक्ति अपने उन पुराने अनुभवों को भूल चुके थे; वे क्या जानते थे कि मेरे हृदय में क्या-क्या भाव उमड़ रहे थे ! मेरे व्यवहार को धृष्टता समझकर प्रेम के उत्तर-स्वरूप

मुझे कड़ी फटकार मिलती थी, जिससे मेरा हृदय तड़पने लगता था। अनेक बार ऐसे कटु व्यवहार पर रोया हूँ, अनेक बार क्रोध आया है, मान का भाव भी कई बार हृदय में उठा है ; किन्तु फिर भी मैं बालक था। वह मान, वह क्रोध कब तक टिकता ? शीघ्र ही भुला देने की वह आदत अब तक मैं भूला न था।

मैत्री-भाव भी उमड़ पड़ा। स्कूल में कई एक सहपाठियों तथा अन्य सम-वयस्क बालकों से मिलना होता था। हृदय ने उनके प्रति एक नये ही भाव का अनुभव किया ; परन्तु उन दिनों की मैत्री, उस समय की सरलता तथा पारस्परिक प्रेम को याद करके आज भी शरीर पुलकित हो जाता है। उनके स्मरण-मात्र से—उस समय के बीत जाने के विचार-मात्र से—आँखों में आँसू आ जाते हैं। उस समय परस्पर कितना शुद्ध प्रेम होता था, उसमें कितनी सरलता थी, कपट का कितना अभाव था ; अनबन हो जाती थी तो कितनी अचिरस्थायी होती थी ! कितनी जल्दी पुनः मेल हो जाता था ! उस समय के सरल शुद्ध स्वाभाविक प्रेम को याद कर आज इस क्रूर काल पर क्रोध आये बिना नहीं रह सकता। उस स्वर्गमय जीवन से इस कुटिल जीवन में ढकेलने के अपराध का क्रूर काल से बदला लेने के लिए कौन उतारू न होगा !

समय का प्रवाह बहता ही गया। जीवन के चक्र के साथ ही मेरी वय भी बढ़ती गई। अब मेरे जीवन में यौवन की मस्ती ने प्रवेश किया। जीवन में एक प्रकार की मादकता छाने लगी। साथ-ही-साथ असन्तोष की मात्रा भी बढ़ी। हृदय में न अब पहले की-सी सरलता रही, न शान्ति ही । मैं बहुत कुछ पढ़ चुका था ; परन्तु किसी भी प्रकार मैं अपनी पुरानी सरलता तथा विगत शान्ति को पुनः प्राप्त

करने में सफल न हुआ।

मेरे भावों में भी परिवर्तन हुआ। आज तक मेरे हृदय में प्रेम उमड़ता था, मेरा हृदय सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता था; किन्तु इससे अधिक कोई भाव न था। अपने सहपाठियों, मित्रों आदि के प्रति जो प्रेम उमड़ता था, वह अब तक हृदय से बाहर नहीं निकलता था। सौन्दर्य को देखकर मैं मुग्ध हो जाता था, उसकी ओर आकृष्ट होता था; किन्तु कोई दूसरा भाव नहीं आया था। पर अब मैं हृदय के भावों को प्रकट करने के लिए उत्सुक हो गया। अब चाहने लगा कि जिनसे मैं प्रेम करता था, उन पर अपना प्रेम प्रकट करूँ; उन्हें बता दूँ कि मेरे हृदय में उनके प्रति अगाध प्रेम का सागर किस प्रकार हिलोरें मार रहा है। अब तक मैं जो कुछ देखता था, वह आंखों के लिए दर्शनीय-मात्र था। अब मैं उसे स्पर्श करने, उसकी सुन्दरता का व्यक्तिगत अनुभव करने, तथा उसे अपनाने को चंचल हो उठा। कई विचार मेरी इन इच्छाओं को रोकते थे; किन्तु हृदय रोके न रुकता था, वह मचल ही जाता था।

परन्तु, अब देखता हूं, वह मस्ती खुमारी में परिवर्तित हो रही है। मुझे प्रतीत होता है कि अबाध तथा अविरल गति से बहने वाले उस प्रेम के सोते की राह में यत्र-तत्र रोड़े पड़े हैं। प्रवाह भी अब कुछ कम होने लगा है। हृदय के असंतोष तथा शान्ति वास्तविक जीवन के कुछ कठोर थपेड़े खाकर बहुत कुछ कम हो गए हैं। फिर भी वे बुझे नहीं; अन्दर-ही-अन्दर विद्यमान हैं।

मुझे सर्वत्र अपने जीवन तथा भावों पर एक विचित्र पाला-सा पड़ता दिखाई देता है। मेरे सरल-सुकोमल भावों का उद्यान आज

उजड़ गया। मेरे सरल शुद्ध स्वाभाविक प्रेम का सोता कलुषित हो गया। उसका जल जाड़े के मारे जम-सा गया है, प्रवाह में शिथिलता स्पष्ट-रूपेण दृष्टिगोचर होती है। मेरे अन्तर्जगत् को श्मशान-स्वरूप देखकर हृदय रोता है। जो एक समय मेरे जीवन के एक-मात्र आभूषण थे, जिन पर मुझे अभिमान था, उनको नष्ट होते देखकर मेरी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं।

नहीं जानता कि यह शैत्य कब तक रहेगा, यह बर्फ कब तक पिघलेगी। क्या इस उजड़े हुए उद्यान में पुनः पुष्प खिलेंगे? क्या उद्यान में वही पुरानी बहार फिर आएगी? आजकल की दशा देखते हुए मैं निश्चितरूपेण कुछ भी नहीं कह सकता। देखें भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है?

अब प्रतीत होता है कि जीवन में पुनः परिवर्तन होने वाला है और वह परिवर्तन बहुत बड़ी उथल-पुथल उपस्थित कर देगा। मैं इस बार एकबारगी एक विचित्र वातावरण में प्रवेश कर रहा हूँ। कहाँ तक मेरे पुराने संस्कार और संसर्ग भविष्य में काम देंगे, सो मैं नहीं जानता। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मेरे हृदय में एक नये तूफान के आने के लक्षण पुनः दिखाई दे रहे हैं।

अब मुझे अपने नये मार्ग पर जाना ही होगा। कहाँ तक अपने चलने का समय टाल सकूँगा? मैं ठहर नहीं सकता। यदि किसी प्रकार मैं समय को थोड़ी देर के लिये भुलावा देने में सफल हो सका, तो....; परन्तु यह तदबीर अधिक देर तक काम नहीं दे सकती। वह कराल-काल किसीको नहीं छोड़ता। अपनी भीषण चक्की में वह प्रत्येक को—चाहे वह पशु हो, पक्षी हो, अथवा मनुष्य हो, राजा हो

या रंक हो, वृद्ध हो या बालक हो, पुण्यात्मा हो या पापी हो—पीस ही डालता है।

अपने विगत जीवन का सिंहावलोकन करते हुए बहुत देर हो गई। उसके वियोग में दो आँसू तथा उसकी स्मृति में तप्त जल की दो अञ्जली अर्पण करके विदा होता हूँ। कितने दुःख के साथ आज मैं विदा ले रहा हूँ, यह मैं ही जानता; परन्तु विदा लेनी ही पड़ेगी।

यह तो हुआ विगत जीवन का हाल; परन्तु आगे कहाँ जा रहा हूँ? यह मैं कैसे बता सकता हूँ! भविष्य का मार्ग अदृश्य है, दिखाई नहीं पड़ता। इस मार्ग पर भीषण कुहरा छाया हुआ है। घनीभूत बादल उसे मेरी दृष्टि से छिपाये हुए हैं। मैं अज्ञान, भविष्य में न जाने किस ओर जाऊँगा। उस अज्ञात मार्ग में न जाने कितनी कठिनाइयाँ, कितनी आपदाएँ हैं, जिनका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं। अब तक तो मैं उस कराल क्रूर काल के हाथ की कठपुतली था। और अब भविष्य में मेरा उसका क्या संबंध होगा, यह मैं नहीं जानता। मुझे ऐसे अन्धकारपूर्ण भविष्य में केवल दो बातों का भरोसा है—प्रथम तो मुझे अपनी शक्तियों पर भरोसा है, दूसरे मुझे जगन्नियन्ता परमपिता पर दृढ़ विश्वास है, जिसकी कृपा से कोई वंचित नहीं; जैसे—अत्याचार-पीड़ित यहूदियों को अत्याचारपूर्ण मिश्र से बाहर जाने में उस परमपिता ने दिवस के समय एक बवँडर तथा रात्रि के समय अग्नि-पुंज की सहायता से मार्ग बतलाया, उसी प्रकार अज्ञात और अन्धकारपूर्ण भविष्य के जीवन में भी वह मेरा सहायक तथा मार्ग-प्रदर्शक होगा, ऐसी आशा करता हूँ।

विदा! मेरे विगत-जीवन! अब विदा। यह तुझसे अन्तिम

विदा है। अब जाता हूँ—उस जीवन में जहाँ से संभव है, पुनः तुम पर दृष्टिपात न कर सकूँ। मैं सदा के लिए तुमसे विदा लेता हूं। अब केवल तुम्हारी स्मृति ही विद्यमान है; परन्तु मैं चाहता हूँ कि ये स्मृतियाँ भी विस्मृति के गंभीर गह्वर में ही विलीन हो जायँ।

अब मैं जाता हूँ—अपने नवीन पथ पर; परन्तु जी चाहता है कि एक बार पीछे मुड़कर फिर देख लूँ; परन्तु नहीं, अब जाना होगा, भूतकाल से नाता तोड़ना ही होगा। मेरे मस्तिष्क! सँभल जा, आगे का मार्ग बड़ा ही भीषण है; राह बीहड़ है। अपनी उन्मत्तता को छोड़ कर तैयार हो जा, जिससे नये मार्ग पर ठीक प्रकार से चला जाय। हृदय! तू भी सँभल जा; कुछ कठोर बन; उस वियोग को सहन कर; उन दिनों को, जो बीत चुके हैं, भुला दे, क्योंकि भविष्य में वे कभी नहीं लौटेंगे। और अन्त में आत्म-विश्वास एवं जगत्पिता में विश्वास का—

यह दीपक अपने सम्मुख धर,
जिससे पीछे गिरे मोह की—
छाया, अन्तर हो गोचर
वह भविष्य होवे अवदात।—'पंत'

तीन

यौवन की खुमारी

बहते हुए जल की नाईं मेरा अल्हड़पन मुझे छोड़कर चल दिया। मेरी सुकोमल बुद्धि असहाय अरक्षित रह गई। अल्हड़पन विदा ले चुका था; परन्तु अब तक विवशता की आहें तथा विस्मृति का घना कुहरा मेरे जीवन को अपनी सुरक्षित चादर के छोर में नहीं लपेट सके थे।

शिकारी की गोली द्वारा सद्याहता मृगी के पास खड़े छौने की नाईं मैं भी संसार की विचित्रता से स्तंभित हो गया। कुछ भी नहीं समझ सका। अज्ञात आशंका से कंपित हो उठा। अन्तर्दृष्टि से संसार की ओर देखा; किन्तु सर्वनाशकारी समय के वीभत्स स्वरूप को देखकर डर गया। आँखें बन्द कर लीं। सुकोमल हृदय से प्रथम बार चीख निकली।

जब हृदय की धड़कन कम हुई, तो आँखें खोलीं....सर्वत्र एक अद्वितीय प्रकाश छाया हुआ था।

मानव-जीवन के प्रभात-काल में अरुणिमामयी प्राची की ओर चकित होकर जो देखा, तो एक नशा-सा छा गया। आँखें न हटीं। उस लालिमा में अद्भुत आकर्षण था, एक मनोहारी मादकता थी। विस्फारित नेत्रों द्वारा मैंने उषा की उन अधखुली पलकों में भरी हुई प्रफुल्ल विकास की उस लाल-लाल मदिरा का पान किया।

वह उन्मादकारी मदिरा थी। लता पर लटके पूरे पके अंगूर की भाँति वह प्याला रस से लबालब भरा था। उसमें नवयौवन का ताज़ापन था, चैत्र-मास के गुलाब के फूलों-जैसी मीठी मादक सुगन्ध थी, उसमें अनार के दानों के समान लाली थी, उसमें खिलती हुई कली की-सी तड़प थी, वह बसन्त की प्रभात-वायु के समान सुखदायक थी।

अज्ञ शिशु की नाईं, या मंत्र-मुग्ध जीव की भाँति मैं बेहोश हो गया। अनजाने हाथ बढ़ा, मैंने प्याला उठा ही लिया और जब होश आया, तो देखा मैं उस प्याले की मदिरा पी चुका था। अगर उस प्याले में कुछ शेष था, तो वह तलछट, वे थोड़े से बुद्‌बुद् और कुछ फेन।

बस, एक ही बार पी थी—एक ही बार! तब भी एक ही प्याला —केवल दो-तीन घूँट।

अब यौवन का उन्माद व्यापने लगा। पूर्ण वेग से धमनियों में रक्त का संचार हुआ। हृदय उछलने लगा। आँखों में लाली छा गई। उनमें मादकता भर गई। उनकी कोरों में कुछ हलाहल विष भी एकत्र हो गया। ओठों पर मुस्कराहट नृत्य करने लगी और केशों की दो लटें मुख के दोनों ओर चौंर डुलाने लगीं।

अब नशा आया। मैं कभी पीता न था। आज ही प्रथम बार मदिरा ओठों तक ले गया था। और वह भी थी यौवन-मदिरा! उछल-कूद में हृदय के सारे बन्धन टूट गये, वह मुक्त हो गया। बेहोशी-सी होने लगी, मस्ती छा गई।

वह यौवन-मदिरा थी, बेहोशी में अनजाने मन्त्र-मुग्ध की नाईं

पी गया था। हृदय में अग्नि-प्रज्वलित हो गई। जलन होती थी; किन्तु इस जलन में भी अपूर्व आनन्द आता था।

अब मस्ती का नर्तन आरम्भ हुआ। मेरे लिए सारे विश्व में मदिरा की वह उन्मादक लाली छा गई। मैं उन्मत्त हो गया। बेहोशी को ढकेल कर उसका आसन मुक्ति-भाव ने ग्रहण किया। एकछत्र शासन करने लगा। मर-मिटने की, कुछ कर-गुजरने की, साध उठ खड़ी हुई। इस सुन्दर संसार में उन्मत्त आँधी की भाँति मैंने प्रवेश किया।

संसार में अब मुझे मेरे अतिरिक्त कोई भी दिखाई नहीं देता था। देखा, आकाश काँपता था, पृथ्वी थर्रा रही थी, बादल गड़गड़ा रहे थे। बिजली मेरे सम्मुख नत-मस्तक हो गई थी। बसन्त की बयार मेरे लिए विजन डुला रही थी। पुष्पों ने अपने आपको मेरी राह में डालकर धन्य समझा। वृक्षों ने मेरे मस्तक पर छत्र लगाया। लताओं ने मुझ पर चौंर डुलाना आरम्भ कर दिया।

मैं मतवाला हो गया। मेरी धमनियों में उस लाल रुधिर की बाढ़ आ रही थी। फूटते हुए कोंपल की तरह मेरा यौवन प्रस्फुटित हो रहा था। उमड़ती हुई नदी के पाट के समान मेरा वक्षःस्थल विशाल हो उठा।

यौवन की पहली ही करवट थी। नवजीवन की मदिरा का पहला ही प्याला था। उसमें मादकता थी, मस्ती थी, बेहोशी थी।

मैं अलसाया हुआ पड़ा था। आँखें खोलीं, तो देखा, बैठा हूँ। इस अनजान संसार में सब ओर घना कुहरा छाया हुआ था, कुछ भी नहीं दिखाई देता था, केवल प्रकाश की कुछ किरणें यत्र-तत्र घुसती हुई

दिखाई पड़ रही थीं।

कुछ बीती बातें याद आती थीं। कुछ भीनी-भीनी सुगन्ध भी महक रही थी। मुझे प्रतीत हुआ कि नशा उतर रहा था, फिर भी खुमारी शेष थी।

परन्तु हृदय में कसक जान पड़ी। कुछ दर्द था—वह भी दिल के पहलू में; इससे अधिक समझ में नहीं आया। विस्मृति की ठंढी पट्टी चढ़ी हुई थी, फिर भी दर्द मालूम होता था।.....आँखों से दो आँसू टपक पड़े।

किन्तु.....अरे, यह क्या ? किस अज्ञात व्यक्ति का वह गोरा-गोरा सुगठित हाथ, वह सुन्दर प्याला, उसमें भी वही लाल-लाल मदिरा।.....प्यासे की नाईं मैंने हाथ बढ़ाया। प्याले को लेने का प्रयत्न किया।

आह ! वह हाथ अदृश्य हो गया। वह प्याला गिर पड़ा, मदिरा ढलक गई, मैं चीख पड़ा।

केवल सपना था। अधिक कुछ नहीं। मेरे हृदय-संसार का धूम-केतु था। न जाने किधर से आया था, न जाने कहाँ लौट गया !

नहीं, सपना नहीं हो सकता। हृदय का दर्द अब भी बाकी है। उन्माद का प्रभाव अभी दिखाई पड़ता है। सारे शरीर में यत्र-तत्र ऐंठन मालूम होती है।...

परन्तु वह लाल मदिरा, अरे ! वह लबालब भरा प्याला, और यौवन-मदिरा की वह बोतल.....स्मृति-मात्र से दिल फड़क उठता है।

बस एक ही प्याला पिया था। एक ही बार पी थी; किन्तु वह भी खूब छककर और उसके बाद ही वह बेहोशी....।

आह ! मैं दर्द के मारे चीख पड़ा। मेरे पैर में कुछ धँस गया। आँखें खुल-सी गईं। उस अज्ञात लोक से एकाएक पर कटे हुए पक्षी की भाँति धम से पृथ्वी पर आ गिरा।

देखा, मेरे ही पैरों के पास यौवन-मदिरा की वह बोतल खाली थी और वह प्याला टुकड़े-टुकड़े बिखरा पड़ा था। उस बेहोशी में न जाने कब वह प्याला उस कठोर पृथ्वी पर गिरकर चूर-चूर हो गया।

जिस प्याले को मैंने बड़े प्रेम से चूमा था, उसकी यह भग्नावस्था.....उन टूटे हुए टुकड़ों को देखकर, मेरा दुखित हृदय फट पड़ा। दो बूँद आँसू ढलक पड़े। दुख के मारे मैं रो पड़ा।

उस सुन्दर यौवन-मदिरा को यादकर, उस बेहोशी के विलुप्त हो जाने पर, उस सुन्दर संसार के विध्वस्त हो जाने के विचार-मात्र से मैं क्षुब्ध हो गया। जो आँसू ढलके, वे उसी प्याले के टूटे टुकड़ों पर गिरे।

कहाँ तो वह सुन्दर प्याला और कहाँ ये भग्न क्षत-विक्षत टुकड़े ! कहाँ वह लाल-लाल सुन्दर ठंढी मदिरा और, कहाँ यह श्वेत गरम-गरम आँसू ! कहाँ वह उन्मादकारी जीवनदायिनी सुगन्धित मदिरा, और कहाँ विवशता तथा अपनी भग्न आशाओं, विचारों, तथा आकांक्षाओं पर ढलके हुए ये निर्जीव आँसू ! उस खुमारी का वह प्रारम्भ और उसका इस प्रकार अन्त ! अधिक नहीं, कुछ ही क्षणों का अन्तर था।

उस भग्न हृदय की दरार से एक आह निकली—एक सर्द निःश्वास !

आह ! ढूँढ़ता हूँ उस पिलानेवाले को जिसने मुझे अनजाने ही

यह मदिरा पिला दी। पहले कभी न पी थी; परन्तु अब भुलाए नहीं भूलती। ओठों में लगा वह प्याला, वह बेहोशी, यौवन की मस्ती...! वह खुमारी भी लुप्त हो गई, शरीर अभी तक अलसाया हुआ है। पुनः प्यास लगी है। चाहता हूँ, कहीं वह अदृष्ट पिलाने वाला मिल जाय। पुनः एक बार ढले वही मदिरा, वही प्याला, एक बार और पी लूँ— अधिक नहीं, केवल एक ही बार!

चार

कब का खड़ा पन्थ निहारूँ

बड़ी देर से मैं खड़ा तुम्हारी राह देख रहा हूँ। नहीं जानता कब तक आओगे।

आवन कहि के अजहुँ न आये
करि-करि वचन गये।

गोधूली का समय हो गया, सोचा कि दिन में, उस प्रतिक्षण क्षीण होने वाले प्रकाश में, अनन्त पथ पर भ्रमण करते हुए, कम-से-कम एक रात्रि के लिए तो तुम मेरे यहाँ ठहरोगे। एक ही झोंपड़ी में रात्रि-भर मेरे यहाँ रहोगे; परन्तु तुम न आए। वह सन्ध्या का क्षीण प्रकाश भी विलीन हो गया। पश्चिमी क्षितिज की लाली का अन्तिम प्रतिबिम्ब भी अन्धकार में परिणत हो गया। फिर भी खड़ा-खड़ा तुम्हारी राह देखता रहा, बाट जोहता ही रहा। उस अनन्त पथ पर कोई पथिक भी आता हुआ दूर तक दिखाई न दिया। अन्त में निराश होकर झोंपड़ी के द्वार पर बैठ गया।

रात्रि आ ही गई। पुष्पों का जो उपहार मैं तुम्हारे लिए लाया था, वह मेरे ही पास रखा था। उस पर मँडराने वाले भौंरे भी चले गये। सब ओर अन्धकार छाया हुआ था। निविड़ तम ने समस्त विश्व पर अपना डेरा डाला। रात्रि अपने काले अंचल में सारे संसार को लपेट कर विश्राम करने लगी।

सारा संसार शान्त और निश्चल था। कहीं भी कोई ध्वनि

सुनाई नहीं पड़ती थी। समस्त विश्व सोता था, वृक्ष निश्चल थे, पक्षी बसेरा ले रहे थे, पशु सुख की नींद लेटे थे। ऐसे सुप्त संसार में मैं ही अकेला बैठा तुम्हारी राह देख रहा था—तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा अनन्त की ओर ताक रहा था। रात्रि के उस अन्धकारमय अंचल में यत्र-तत्र तारे चमक रहे थे, जिससे एकाएक उस निराशा में भी आशा का संचार हुआ। मैं सोचने लगा, संभव है तुम उन जगमगाते हुए तारों के प्रकाश-पथ पर होकर मेरे पास आओगे।

समस्त संसार को, सारे नभ-मण्डल को, खुली आँखों देख रहा था। प्रत्येक क्षण सतर्क होकर ताक रहा था। डर था, कि कहीं तुम आ गये और मैं देख भी न सका। यह भी सम्भावना हृदय में उठ रही थी, कि यदि कहीं मैं सो गया और तुम आ गये और मुझे बिना जगाये ही लौट गये तो। इसीलिए मैं आँखें फाड़-फाड़ कर तुम्हारी राह देख रहा था; किन्तु धीरे-धीरे आशा की ये एक-मात्र रेखाएं भी विलीन होने लगीं। एक ओर से काले बादलों की घनघोर घटा छाने लगी। एक-एक करके सारे तारे छिपने लगे। आकाश मेघाच्छादित हो गया। बूँदें टप-टप गिरने लगीं। मैं भी अपनी झोंपड़ी में निराश होकर बैठ रहा—रोता रहा। उधर मेघों की वर्षा और इधर आँखों की बूँदा-बाँदी, मेरी झोपड़ी की भूमि गीली हो गई थी। सारी आशा उन भयंकर स्वरूप वाले बादलों को देखकर आँसुओं के साथ बह गई, कपूर की नाईं विलीन हो गई। आह!

उस निराशा में भी आशा का प्रकाश था। एकाएक बिजली चमकी। सारा संसार जगमगा उठा। घोर नाद के साथ गड़गड़ाहट हुई। सोचा, कदाचित् यह प्रकाश, यह घोर ध्वनि, तुम्हारे आने की सूचना दे रही है। तुम उन काले-काले गड़गड़ाते हुए बादलों पर बैठ

कर अनजाने आ पहुँचे हो। तुम्हारे लिए जो पुष्प मैं लाया था, वे यत्र-तत्र बिखर गये थे। शीघ्रता-पूर्वक उन्हें चुनकर पुनः एकत्र किया। निराशा ने फिर विदा ली, आशा के साथ उत्सुकता का आगमन हुआ, पुनः आँखें द्वार की ओर टिक गईं।

फिर भी तुम न आये। बाट जोहते-जोहते रात भी बीत गई। प्रातःकाल के साथ पक्षियों ने कलरव आरम्भ किया। वे फुदक-फुदक कर अपनी मधुर ध्वनि से संसार को मुग्ध करने लगे। भ्रमरों ने अपनी हृदयहारी गुंजार आरम्भ की। पूर्व दिशा में लाली छा गई। उषा भगवान्-भास्कर के आगमन की सूचना देने के लिए दौड़ पड़ी। मैं विस्फारित नेत्रों से इस दृश्य को देख रहा था। कुछ समय तक मैं भी मुग्ध हो गया, परन्तु तुम्हारी स्मृति एकाएक फिर हो आई। मैं प्रकृति के उस आनन्दमय दृश्य को देखकर फिर सोचने लगा, कदाचित् तुम्हारे आगमन की सूचना पाकर प्रकृति स्वागत का साज सजा रही है। भगवान् मरीचिमाली भी पूर्व दिशा में क्षितिज पर मुस्कराकर झाँकने लगे। कदाचित् तुम आते हो, उन सुन्दर सुनहली किरणों पर बैठकर मेरे पास आते हो। आशा फिर जागृत हो गई। तुम्हारे दर्शन के, तुमसे मिलने के, विचार-मात्र से हृदय तड़प उठा। नवीन जीवन का संचार हुआ।

दिन-भर बैठा तुम्हारी राह देखता रहा; किन्तु अभी तक नहीं आये। पुनः सूर्य भगवान् अस्ताचल को जाते थे। अपने जीवन-पथ पर अग्रसर होते हुए पशु-पक्षी भी रात्रि को घर लौट रहे थे। राह के पथिक अपने विश्राम का प्रबन्ध कर रहे थे; किन्तु तुम नहीं आये। बाट जोहते-जोहते न जाने कितने दिवस, कितने मास, कितने वर्ष बीत

गए, मैं स्वयं नहीं जानता। तुम्हारी राह देख रहा हूँ, इतने दिवस बीत जाने पर भी तुम नहीं आये। यह भी नहीं जान पड़ता कि तुम कब तक आओगे।

'कब का खड़ा पन्थ निहारूँ !'

पांच

आदेश

प्रातःकाल का समय था। सुगन्धित समीर धीरे-धीरे बह रहा था। मरीचिमाली भगवान् क्षितिज से कुछ दूरी पर प्रस्थान कर चुके थे। अभी उनका तेज पूर्णतया व्यक्त नहीं होने लगा था। जगन्मुकुटमणि भारत देश अपनी महान् सभ्यता के मध्याह्न में विकराल राहु द्वारा ग्रस्त होना ही चाहता था। गंगा-यमुना तथा सिन्धु का क्रीड़ास्थल एक नवीन आभा से उज्ज्वल हो रहा था। इसी मैदान पर दो काली-काली रेखाएँ बढ़ती हुई दीख पड़ने लगी थीं, और उनकी कालिमा में एक विचित्र भयंकरता दृष्टिगोचर होती थी।

महाभारत की तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। संग्राम का प्रथम दिवस था। दोनों दल युद्ध के लिए बद्ध-परिकर थे। 'अरे! यह कौन अपने रथ को इधर-उधर दौड़ा रहा है! यह रथ दोनों सेनाओं के बीच में क्यों ठहर गया? यह धीर वीर क्षत्रिय अपनी सेना का सेनापति होते हुए भी अपने शस्त्रास्त्र क्यों डाल रहा है? यह क्या लीला है?' यह वीरवर अर्जुन था। उसने यह देखकर, कि उसे युद्ध करना ही होगा, अस्त्र डाल दिये। श्रीकृष्ण उसके सारथी बने थे। अपने कर्तव्य से विमुख हो जाने पर—सम्बन्धियों से युद्ध छेड़ने की इच्छा न होने के कारण—श्रीकृष्ण गीता का स्वर्गीय सन्देश सुनाते हुए, गम्भीर वाणी से आदेश करने लगे—

क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप!

कई हज़ार वर्ष व्यतीत हो गए। आज फिर वही पुराना दृश्य एक नवीन स्वरूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ है। भारत में नवीन युग का प्रभात हुआ है। पूर्व दिशा में सूर्य्योदय के पहले की लालिमा फैल रही है; मोह, अज्ञान और पतन का अन्धकार अब विलीन हो चला है। अपने प्राचीन दोषों से--पुरानी रूढ़ियों से, जो हमारी जाति को नाश की ओर ले जा रही थीं—हम लड़ने को तैयार हो गए हैं। समग्र भारतवर्ष में एक ध्वनि निनादित हो रही है, "क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ"; 'सुधार की आवश्यकता है, उन्नति अत्यावश्यक है।' किन्तु ज्यों-ज्यों प्रकाश बढ़ता जाता है, ज्यों-ज्यों हमारे ज्ञान की परिधि बढ़ती जाती है, हमें स्पष्टतया यह दिखाई पड़ने लगा है, कि अपने देश के सुधार के लिए तथा पुराने दोषों को मिटाने के लिए, जो भीषण महाभारत हमें छेड़ना होगा, उसमें हमें अपने पुराने विचारों का संहार करना होगा। पुरातन की हानिकारक रूढ़ियों को खोद-खोद कर दूर फेंकना पड़ेगा। पुराने विचारों के पोषक हमारे आदरणीय सम्बन्धी इसका विरोध करेंगे, उनसे मनमुटाव हो जायगा, यही नहीं, भयानक-से-भयानक विपत्तियों के बीहड़ बन को पार कर, सारे भारतीय समाज में नवीन सन्देश सुनाकर क्रान्ति करनी होगी। इन सब बातों पर विचार कर, अर्जुन के समान हमारे भारतीय युवक तथा नवीन विचारों के पक्षपाती भी झिझक गये हैं। वे कह उठे हैं 'स्वजनों को विरोध करने के लिए तत्पर देखकर हम इस क्रान्ति को यथार्थता में परिणत नहीं कर सकेंगे।'

भगवान् श्रीकृष्ण आज पुनः उन्हें गीता का सन्देश सुनाते हैं।

हमें आदेश मिला है कि—'स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।' अपने उद्योग को कार्य-रूप में परिणत करना ही होगा।

समाज में क्रान्ति का संदेश, नवीन काल के आगमन का समाचार, हमें भारत में घर-घर ले जाना होगा। सोये हुओं को नवीन काल के लिए तैयार होने के लिए सजग करना होगा। हमारा उद्देश्य उच्च है, हम सत्य के पोषक हैं, समाज के हितैषी हैं, समाज को पतन के कूप से निकाल कर पुनः उसे प्राचीन उच्च स्थान पर स्थित करना ही हमारा ध्येय है; अतः हमें चाहिए कि—'निराशी निर्ममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वरः।' संभव है, हमें अपने प्रयत्न में सफलता कुछ काल तक न मिले, कई बार हमें मुंह की खानी पड़े; किन्तु—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' और इस निराशा या विकलता के विचार से यदि हम अपने कर्तव्य से विमुख हो जायँ और युद्ध से मुंह मोड़ लें, तो 'ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि'। और फिर, 'अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्। संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।'

अतः हमारा कर्तव्य है, कि हम सब प्रकार की द्विविधा को हटाकर युद्ध के लिए तैयार हो जायं।

भगवान् श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी के दिन आज भी उनका आदेश स्पष्ट शब्दों में सुनाई दे रहा है—

'क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।'

छः

क्या पुनः गीता का सन्देश न सुनाओगे ?

बहुत वर्ष व्यतीत हुए, कई शताब्दियाँ हो गईं, जब भारत जगद्गुरु था, सारे संसार का मार्ग-प्रदर्शक था। तब इसी भारत-भूमि पर धर्म और अधर्म का भीषण संग्राम मचा था, जिसका अन्तिम दृश्य कुरुक्षेत्र के मैदान पर घटित हुआ। उस समय नाथ ! धर्म की विजय स्थापित करने में सहायता देने के लिए तुम्हें पार्थ के सारथी का काम करना पड़ा था। साथ ही, अधर्म को सर्वदा के लिए नष्ट करने को अपने निमित्त-मात्र अर्जुन को कर्तव्य का पाठ पढ़ाना पड़ा था। अधर्म की ओर अपने सम्बन्धियों, साथियों और पूज्यों तक को सहायता देते हुए देखकर, जब अर्जुन युद्ध करने से हटने लगा, तब तुमने ही नाथ ! उसे कर्तव्य से च्युत नहीं होने दिया। अपनी सुदूर-दर्शी दृष्टि से तुमने यह जानकर कि कदाचित् भविष्य में फिर वैसी ही परिस्थिति उपस्थित हो जाय, अपने साथियों को धीरज बँधाने के लिए—उन्हें अपने कर्तव्य पर डटे रहने के लिए—वचन दिया था—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

भगवन् ! इस बात को बहुत दिन बीत गये। हजारों वर्षों की

पुरानी कथा है। नहीं ज्ञात है कि उपर्युक्त वचन आपको अब भी याद हैं या नहीं। कम-से-कम हम तो आपकी प्रतिज्ञा को अबतक नहीं भुला सके।

उस समय आपने कुरुक्षेत्र के मैदान में गीता का पाठ अर्जुन को कर्तव्य सुझाने के लिए तथा संसार को निष्काम कर्म की महत्ता बताने के लिए, सुनाया था; किन्तु उस समय के बाद हमारी दशा बहुत कुछ बदल चुकी है। हम अपना सारा प्राचीन गौरव खो चुके हैं। एक बार जो गिरे, गिरते ही गये; पर नाथ! तुम्हारे उस सन्देश के आधार पर अबतक खड़े हैं। यदि आशा का तिरोधान हो जाता, यदि भविष्य का आशापूर्ण दृश्य हमारे सम्मुख न होता, तो नहीं मालूम हमारी आज क्या दशा हो जाती; किन्तु हमें तुम्हारे वचनों पर भरोसा है, उसी पर हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-जाति अबतक स्थित है।

परन्तु उस पतन का ऐसा कुप्रभाव पड़ा है, उससे हमारी बुद्धि ऐसी पथरा गई है, अपने कर्तव्य अथवा अकर्तव्य के पहचानने की चेष्टा इतनी विगत-चेतना हो गई है कि हम तुम्हारे संदेश को अब समझ तक नहीं पाते, उसे अकर्मण्यता का संदेश बनाये बैठे हैं। वह संदेश, जो रण से विमुख होते हुए योद्धा को संग्राम में अग्रसर करने के लिए सुनाया गया था, वही आज न जाने कितने भारतीय युवकों को अपने कर्तव्य से विमुख कर रहा है। कितनी भीषण काया-पलट हो गई है, हमारी बुद्धि कितनी निस्तेज हो गई है! न जाने कितने युवक आज उसी गीता से वैराग्य का पाठ पढ़ कर संसार का परित्याग कर देते हैं, अपने जीवन-संग्राम से भाग खड़े होते हैं। भगवन्! आज हमारी यह दशा! आपके संदेश की दुहाई देकर आज हम संसार से विमुख हो रहे हैं!

आज हमारी बुद्धि केवल विगत-चेतना ही नहीं हो गई है, हम पथ-भ्रष्ट ही नहीं हो गए हैं, अपने नैतिक पतन के फल-स्वरूप आज हम इस सांसारिक जीवन को भ्रष्ट ही नहीं कर चुके हैं; वरन् धर्मच्युत् भी हो गए हैं। आधुनिक भौतिक-सभ्यता ने हमें अपने आध्यात्मिक पथ से विपथ कर दिया है। थोथी भौतिक सभ्यता अपने बाह्याडम्बर तथा ऊपरी तड़क-भड़क से मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। वह उन्हें पथ-भ्रष्ट करने का प्रयत्न करती है। उसके धोखे में आकर हम अपना जीवन तक नष्ट कर चुके हैं।

किन्तु नाथ ! यदि यह सब यहाँ पर ही समाप्त हो जाता, तो कुछ—यदि संतोष नहीं तो—आशा ही होती; किन्तु क्या करें, उसके मृत-प्राय शरीर में पुनः प्राण-स्थापन करने के लिए जो प्रयत्न किये गए हैं, उससे हिन्दू-धर्म के क्षेत्र में विद्रोह उठ खड़े हुए हैं। भिन्न-भिन्न मतानुयायी आज एक-दूसरे का विरोध कर रहे हैं। समस्त हिन्दू-संसार अराजकता का भीषण क्षेत्र बना हुआ है।

ऐसे समय पुनः अकर्मण्य जाति में जीवन का संचार करने को, अधर्मता को नष्ट करके पुनः धर्म स्थापन के पुण्य-कार्य को तथा मनुष्यों को उनका कर्तव्य-पथ सुझाने को, तुम्हारे अतिरिक्त नाथ ! कौन समर्थ है ?

मृत-प्राय जाति में जीवन-संचार करना होगा। उसकी अकर्मण्यता को नष्ट करके, उसे नवीन पथ की ओर अग्रसर करना होगा। इसी जाति के मुख से पुनः यह शब्द निकलवाने होंगे—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थिरोऽस्मि गत संदेहः करिष्ये वचनं तव ॥

आधुनिक विद्रोहियों के सब भिन्न-भिन्न मतों को दबा कर तथा प्राचीन धर्म में सुधार करके पुनः धर्म-प्रचार करना होगा। यही नहीं, हमें पुनः अपना कर्तव्य बताना होगा, आध्यात्मिक जीवन का ठीक मार्ग सुझाना होगा।

नाथ! यह महान् कार्य है। आज हम मृत्यु के गाल में जाने ही को हैं। समस्त जाति में अकर्मण्यता का विष फैला हुआ है। अब तुम्हारे बिना इस जाति को और भी कोई सहारा है? फिर हमें तुम्हारी उस प्रतिज्ञा का स्मरण होता है। हम पतित हो गए हैं, तुम्हारे सन्देश का सच्चा अर्थ समझने तक को असमर्थ हैं, फिर भी आज तुम्हारा संदेश पढ़ते अवश्य हैं; अतः जब-जब तुम्हारी यह आज्ञा, 'सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' पढ़ते हैं तब-तब यह विचार आता है कि इस नाशोन्मुखी जाति को बचाने के लिए तुमको पुनः आवाहन करना होगा, और इसे बचाने के लिए तुम्हें फिर संसार में आना होगा, अवतार लेना होगा; किन्तु हृदय में शंका उत्पन्न होती है कि कदाचित् तुम न भी आओ। यदि हमारी प्रार्थना पर तुम ध्यान न दो, तो अपनी प्रतिज्ञा तो पूरी करो। वह प्रतिज्ञा अवश्य पूरी होनी चाहिए; अतएव तुम्हें आवाहन करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता।

अतएव नाथ! हम कब तक तुम्हारी राह देखें? कब तक बुलाने के लिए तुम्हारी अभ्यर्थना करें?

आओ नाथ! बहुत दिन से उस दिन को देख रहे हैं। पुनः कब वृन्दावन वाली मुरली की वह सुमधुर ध्वनि कानों में पड़ेगी? फिर कब आपकी गीता का संदेश हमें कर्तव्य की दिशा की ओर

बढ़ाएगा ? हम आशा लगाए हैं कि तुम पुनः आओगे, पुनः हमें गीता का संदेश सुनाओगे, पुनः जीवन-संग्राम में विजय पाने का सन्मार्ग दिखाओगे।

बहुत दिनों से आशा लगी है। क्या हमें पुनः गीता का सन्देश न सुनाओगे ?

सात

अतीत-स्मृति

बीहड़ वन है। सारे जंगल में काँटों से लदे हुए वृक्ष खड़े हैं। झाड़ियाँ इतनी घनी हैं, कि पुराने मार्ग अब बन्द हो गए हैं। जंगल को देखकर प्रतीत होता है कि वहाँ भीषण जीवन-संग्राम हो चुका है। इसी जंगल के एक स्थान पर कुछ खुला हुआ स्थान है। वहाँ झाड़ियाँ नहीं हैं, एक गोलाकार मैदान है, जिस पर हरी-हरी दूब लगी हुई है। इधर-उधर एक-आध छोटे पौधे भी हैं और बीच में एक वृहद्काय वृक्ष खड़ा है, जिसके मस्तक पर एक ही पुष्प खिला हुआ है। वृक्ष बहुत ऊँचा है। उस पर का पुष्प विकसित होने पर भी पूरा खुला हुआ नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि उच्च स्थान पर स्थित होने के कारण सकुचा-सा गया है। उस पुष्प से एक अतीव मनोहारी भीनी-भीनी सुगन्ध बह रही है। इस सुगन्ध से वही एक स्थान नहीं, सारा जंगल सुवासित हो रहा है। उस जंगल में प्रवेश करते ही, वह सुवास प्रत्येक पथिक तक पहुँच जाती है और एक अज्ञात आकर्षण उसे वहाँ तक खींच लाता है; परन्तु उस स्थान तक पहुँचने में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मार्ग की घनी झाड़ियों का उल्लंघन, उनसे बचना, एक समस्या है; परन्तु इन कठिनाइयों का पता पथिक को पहले नहीं लगता। कारण, उस पुष्प की सुगंध उसके पास पहुँचकर मस्त कर देती है। जिस प्रकार बहेलिये के मृदुल संगीत पर मृग अनजाने अपनी मृत्यु के द्वार पर पहुँच जाता है, उसी

प्रकार उस मादकता के छा जाते ही पथिक यह भूल जाता है कि उस सुवास के केन्द्र-पुष्प तक पहुँचने का मार्ग कंटकाकीर्ण है। अन्त में उस स्थान पर जाकर पथिक पड़ रहता है और जब तक तृप्ति नहीं होती और उसकी मादकता नहीं हटती, वह उन्मत्त उस सुवास से अभिभूत रहता है। कंटकमय वन में उस निष्कंटक स्थान को देखकर यही प्रतीत होता है कि उस सुन्दर पुष्प और उसके सुवास के कारण ही वहाँ कोई झाड़ी नहीं रहने पाई।

बहुत दिन बीत गए। समय के प्रभाव से वह पुष्प भी गिर पड़ा। वह वृक्ष भी जरा-जीर्ण होकर सूख गया। इसी समय एक माली आया जो स्वयं को बड़ा ही चतुर समझता था। उसने उस बीहड़ वन को एक सुरम्य उद्यान में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। इस कार्य में उसको कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, यह कहना हमारे लिए असम्भव है। हाँ, जहाँ पहले मार्ग बन्द हो गए थे, जाने को राह तक न थी, वहाँ अब लम्बी-चौड़ी सड़कें बन गईं। जहाँ सारे वन में एक प्रकार की महान् दुर्व्यवस्था थी—जहाँ प्रकृति इच्छापूर्वक पथ तथा विपथ में वृक्ष उगाती थी—वहाँ अब एक प्रकार का क्रम, व्यवस्था तथा नियम पाया जाता है। माली ने प्रकृति को नियमबद्ध कर दिया, अनेक वृक्षों को काट-छाँट कर नवीन रूप दे दिया। अपने पास के बीजों को भी बोया और नवीन प्रकार के वृक्ष उगा दिए। कई प्रकार के पुष्प खिले, अपना रंग लाए, उन्हें देखते ही एक विचित्र मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थित हो जाता था। इन पुष्पों में भी एक निराली सुगन्ध थी।

पर आह! यह क्या? जो पुष्प उस बीहड़ वन में खिला था,

उसकी सौरभ अब तक नहीं गई, वह अब भी फैल रही है। समय के साथ वह पुष्प मुरझा गया, सूख कर गिर गया। समय ने उसको नष्ट कर दिया; परन्तु उसकी सुवास को नष्ट न कर पाया। माली ने भी प्रयत्न किया कि उस वन में ऐसे पुष्प खिलें, जो उस पुष्प की सुगन्ध को दबा दें, उससे अधिक मोहक हों। वह प्रत्येक निष्फलता के साथ अधिकाधिक उत्साहित होकर सुगन्धित-से-सुगन्धित पुष्पों वाले वृक्षों को उगाता था।

एक दिन एक पथिक उस वन की ओर से जा निकला; उसी पुरानी सुवास ने उस पर अधिकार जमाया। वह खिंचा हुआ एक दिशा में जाने लगा। तन-मन का सब ध्यान भूल गया। एकाएक किसी ने उसे रोका, वह चौंक पड़ा।

'कई पौदे रौंद डाले, मार्ग छोड़कर चल रहे हो, क्या सारा उपवन उजाड़ देना चाहते हो ?'

'नहीं, नहीं ! मैं कुछ नहीं जानता, तुमने जब तक मुझे नहीं रोका, तब तक मैं एक प्रकार से उन्मत्त था, मैं बेहोश था।'

'क्या नशे में हो ?'

'नशा ! मैं किसी भी मादक वस्तु का सेवन नहीं करता। एक मनोहर सुवास आती थी, उसी का उद्गम खोज रहा हूँ। बड़ी ही मादक सुगन्ध है। वह वृक्ष कहाँ है, जिसकी सुगन्ध ऐसी मादक है ? तुम बड़े ही चतुर माली जान पड़ते हो।'

'आओ, पथिक, मैंने कई नये-नये वृक्ष इस उपवन में लगाये हैं, जिनका पहले यहाँ पता भी नहीं था। उनके पुष्प कितने मोहक, कितने सुगन्धित हैं, सूँघकर देखो तो। देखो, यह कैसा सुन्दर पौदा है !'

'नहीं, वह सुगन्ध इसकी नहीं है।'

'कदाचित् इसी की हो।'

'नहीं, नहीं, वह तो और ही प्रकार की है।'

'अच्छा, उधर चलो, वहाँ भी कई वृक्ष मेरे ही लगाये हुए हैं, संभव है, उनमें से ही किसी की सुगन्ध ने तुमको मुग्ध कर लिया हो। वे पुष्प इस प्रकार से भिन्न हैं। मैंने ही उनके वृक्ष यहाँ पहले-पहल लगाये हैं।'

'नहीं, माली ! तुम्हारे पुष्प सुन्दर रंग-बिरंगे अवश्य हैं, परन्तु सुगन्ध तो उनमें वैसी नहीं है। जिस मादकतापूर्ण सुगन्ध के प्रभाव ने मुझे यहाँ आकृष्ट किया है, वह थोड़ी भी इनमें नहीं पायी जाती। ओह ! वह कैसी सुगन्ध है ! हृदय यह जानना चाहता है, कि जिसकी यह सुगन्ध है, वह पुष्प कैसा होगा।'

कुछ देर के अनन्तर वह पथिक माली से फिर कहने लगा — 'माली, अब मुझे ही ढूँढ़ने दो। फिर मुझ पर उस पुष्प की मादकता छाने लगी है। वह सुवास इस वायु-मण्डल में विद्यमान है; अतः मैं उसे अवश्य ढूँढ़ूँगा। मुझे मत रोकना। आना चाहो, तो तुम भी मेरे साथ आ सकते हो।'

माली अब ताड़ गया कि मैं पूर्णतया विफल हुआ। वह जानता था, कि पथिक किस सुवास की बात कर रहा है। एक बार और विफल होने के कारण वह खिन्न होकर पथिक के पीछे चलने लगा। अन्त में वह भी उसी स्थान पर पहुँच गया। जहाँ पहले उस सुन्दर पुष्प को धारण किये हुए वह वृक्ष खड़ा था, पहले वहाँ पर जो दूब थी, वह स्वाभाविक छोटी-छोटी थी। जो अब है, वह भी वैसी ही सुन्दर छोटी-छोटी है; किन्तु यह बात स्पष्ट है कि वहाँ काट-छाँट

अवश्य की गई है। अब भी गोलाकार मैदान बना है ; किन्तु अपनी स्वाभाविक झाड़ियों से परिमित न रहकर कंगूरों-द्वारा नियमित है। पुनः, पहले जहाँ वह वृक्ष खड़ा था, वहीं एक फ़व्वारा लगा है और उसके विभिन्न मुखों से अनेकानेक रंग-बिरंगी धाराएँ निकल रही हैं।

पथिक झूमता-झामता वहाँ पहुँचा और ठोकर खाकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद उठा और मतवाले की तरह लड़खड़ाता हुआ उस फ़व्वारे की ओर चला। माली कुछ दूर पर खड़ा हुआ स्तब्ध होकर पथिक की दशा देख रहा था। एकाएक पथिक को फ़व्वारे की ओर जाते देखकर माली भविष्य की आशंका से चौंक पड़ा और उसकी ओर दौड़ा ; पर पथिक पहुँच चुका था। वह उस फ़व्वारे के पास जाकर नीचे बैठकर झुक गया, मानो वह उसके पद छू रहा हो ; पर आह ! उस फ़व्वारे से निकलनेवाली रंग-बिरंगी धाराओं का कुछ पानी पथिक के शरीर पर गिरा। वह एकाएक उछल पड़ा और 'आह' करके पास ही दूब पर लोट गया। अभी माली आ ही रहा था, दौड़-कर देखा ; किन्तु पथिक पर जल अपना असर दिखा चुका था; वह व्यथा से पीड़ित था।

'तुमने यह क्या किया ?'

'यही उस सुगन्ध का उद्गम है ; अतः मैं उस वृक्ष को नमस्कार कर रहा था।'

'नहीं पथिक ! तुम्हें भ्रम हो रहा है। यह बात सत्य है, कि बहुत दिन पहले यहाँ वृक्ष था और उसमें एक पुष्प खिला था। यहाँ आते ही प्रारम्भ में मुझे उसका कुछ-कुछ भान हुआ था ; परन्तु उसे नष्ट हुए बहुत काल व्यतीत हुआ। वह पुष्प सूखकर गिर गया और अब उस वृक्ष का भी पता नहीं है। उसी स्थान पर मैंने एक फ़व्वारा

लगाया है और उसमें से मैं अपने रसायन-शास्त्र के ज्ञान से भिन्न-भिन्न रंगों की धाराएँ प्रवाहित करता हूँ। मित्र और सम्बन्धी जब यहाँ आते हैं, तो वे यह दृश्य देखकर मुग्ध हो जाते हैं; किन्तु जो जल इसमें से प्रस्फुटित होता है, वह हानिकारक है। यदि यह शरीर पर गिर जाय, तो मनुष्य के लिए घातक होता है। मैं नहीं जानता था, आशंका तक न थी, कि तुम यहाँ पहुँचकर अपनी यह दशा कर लोगे।'

पथिक की दशा बिगड़ रही थी, वह साहस करके बोला—'क्या वह वृक्ष सूख गया? नष्ट हो गया?'

'हाँ! बहुत काल पहले ही नष्ट हो गया था।'

'तो क्या तुम उसी श्रेणी का कोई दूसरा वृक्ष नहीं लगा सकते?'

'नहीं पथिक, मेरे पास उस वृक्ष के बीज नहीं हैं। मैं यह भी नहीं जानता कि वह वृक्ष कौन है? उसका बीज कहाँ मिलता है?'

'तो अब तुम्हारे लिए उसके उस पुष्प की सुगन्ध ही रह गई है। क्या वही उसकी एक 'अतीत स्मृति' है?'

'हाँ।'

'तो वैसे वृक्ष के बिना तुम्हारा यह सारा उद्यान सूना है, तुम्हारे प्रयत्न व्यर्थ हैं। तुमने एक बीहड़ वन को सुन्दर उद्यान में परिवर्तित किया है; किन्तु आज उस वृक्ष से रहित यह उद्यान उस वृक्ष के समाधि-स्थान ही के समान है। माली! अगर अधिक न हो, वैसा वृक्ष तुम न लगा सको, तो उसकी यह 'अतीत-स्मृति' तो न मिटाना।'

आठ

वह प्रवाह

गंगे ! तुम्हारी रीति तो संसार से बिलकुल ही निराली है। तुम्हारा अवतरण हुआ—स्वर्ग से महादेव के जटाजूट पर; और वहाँ से हिमाच्छादित शृंगों पर होती हुई मैदान में बहने लगीं; परन्तु यहाँ भी अन्त नहीं हुआ, खारे समुद्र में जा मिलीं और अपने अस्तित्व का भी अन्त कर डाला। परन्तु, तुम्हारे इस पतन ही से तुम्हारा उत्कर्ष है। उच्चासन से गिर कर तुमने संसार का कल्याण किया; अतएव पतित होकर भी तुम पूजनीया हुईं।

और वह आकाश-गंगा ! नभ में बहनेवाली वह स्वर्गीय धारा ! गंगे ! गिर कर भी तुम उससे उच्च हो, मोह-क्षोभ के धुँधले बादल, अनिश्चितता का कुहरा—ये सब तुम्हारे प्रवाह को दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते। तुम छाया-पथ-मात्र ही नहीं हो, वरन् सैकड़ों क्षुब्ध हृदयों को शान्ति-प्रदान करती हो। जहाँ चातक चोंच फैलाकर उस आकाश-गंगा से पानी माँगता है और तरस कर रह जाता है, चक्रवाक उसके प्रवाह को पूर्व से पश्चिम की ओर बहते देखता है और रात-भर कोसा करता है, वहाँ तुम मृत-प्राय मनुष्य के ओठों को सींचती हो, मृत व्यक्तियों की तप्त भस्म को अपने अञ्चल में समेट कर उसे भी शान्त करती हो। अहो !...तुम्हारे दर्शन-मात्र के लिए, तुममें एक गोता लगाने के लिए ही, असंख्य व्यक्ति हज़ारों कोसों से खिंचे चले आते हैं।

यही नहीं, तुमने पाप का पुण्य के साथ सौदा किया है। संसार के पापों को बटोर कर अपना रहा-सहा पुण्य भी उसके बदले में बाँट रही हो। क्या तुम्हारा इतना घोर पतन हो गया ? क्या तुम्हें पुण्य के नाम तक से इतनी चिढ़ हो गई ? किन्तु.....तुम्हारी इस प्रवृत्ति का मूल कारण....? ज्ञात होता है, सांसर्गिक दोष तुममें भी आये बिना न रह सके। शंकरजी के जटाजूट में जब तुम अपनी राह खोज रही थीं, तब तुम्हें भी मृत्युञ्जय के समान विष पीने का चस्का लग गया; परन्तु...अरे !....तुम तो महादेव से भी बढ़ गईं। विष पीकर वे नील-कंठ हो गये; पर सारे पापों को बटोरकर और कृष्णवर्णा यमुना को भी गले लगाकर तुमने अपना रंग नहीं छोड़ा !

और तुम्हारा प्रवाह ! अनन्त आकाश की तरह तुम भी अपने जगमगाते हुए अंचल में यमुना की कालिमा तथा चमचमाती हुई उज्ज्वल चाँदनी की-सी सरस्वती को समेटे हुए हो। छोटी-मोटी डग-मगाती हुई, नौकाएँ उल्काओं के समान तुम्हारे नीले वक्षस्थल पर विच-रती हैं और उन्हीं के समान शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं; किन्तु यह क्या ?.....सागर के निकट पहुँचते ही तुम्हारा वक्षस्थल विदीर्ण हो जाता है और वह विशाल प्रवाह छिन्न-भिन्न होकर छोटी-छोटी धाराओं में निकलता है। गंगे ! तुम्हीं बताओ कि क्या उस परम ब्रह्म की पुत्री की सहायता प्राप्त होने पर भी अपने पतन का अन्त होते न देखकर तथा अपनी विवशता का अनुभव करके तुम रो पड़ीं; या चिरकाल के बाद अपने प्रेमी सागर से मिलने के हर्षातिरेक से तुम्हारा हृदय फट गया; अथवा भारत से होने वाले वियोग ने तुम्हारा हृदय क्षुब्ध कर दिया ?

नौ

वह सौन्दर्य

पुष्प ! वह खिलता हुआ पुष्प ! उसका सौन्दर्य कितना हृदय-ग्राही है ! उसका सौरभ कितना मादक है ! उसका स्वरूप कितना मस्ताना है ; किन्तु नहीं !....ऐ भ्रमर ! तू इस झमेले में न पड़ । इसके उस सुनहले पाश में न बंध । तुझे मालूम नहीं है कि इस सुन्दर वस्तु को कितने काँटे घेरे हुए हैं ; कितने भ्रमर यहाँ आये हैं और उनमें कितनों को हताश होना पड़ा है ?

वे काँटे.....पैने-पैने तीर ! तेरी राह में पड़ने वाले वे रोड़े, सुन्दर, सुडौल किन्तु कठोर हृदय वाले वे तीखे काँटे ! वे तो उस पुष्प को रात-दिन घेरे रहते हैं ।....अरे, जब उस सौन्दर्य से आकर्षित होकर तू अनजाने उन काँटों में बिंधेगा, तब मालूम होगा तुझे कि सुन्दरता को अपनाना कितना कठिन होता है । सोच ले कि वे कठोर पैने काँटे तुझ-से काले रंगवाले को उस सुन्दर कोमल पुष्प तक क्यों पहुँचने देंगे ?

और.....जब तू उन काँटों में बिंधा पड़ा-पड़ा तड़पता होगा, तब तेरी उस दुर्दशा पर कौन रोयेगा ? जिसके लिए तूने इतने दुख-दर्द सहे, वह.....वह तो खड़ा मुस्कराता ही रहेगा । उससे तेरा क्या सम्बन्ध, जो वह तेरे लिए रोये ! तू स्वयं बिना बुलाए मरने चला था । अरे भोले-भाले भ्रमर ! इन काँटों में तेरी तरह न जाने कितने बिंध चुके हैं और बिंधते ही जायँगे ।.....उसने तुझे अपने

सौन्दर्य से आकर्षित किया था, यह सत्य है; किन्तु तू क्यों उस लोभ में फँस गया, क्यों उन अदृष्ट बन्धनों में बँध गया !

और अन्त में.....यह सौन्दर्य तो चार दिन की चाँदनी के समान है। केवल दो दिन की महक है, कुछ ही दिनों का दृश्य है, और फिर....,नष्ट हो जायगा वह स्वरूप, विलीन हो जायगा वह सौरभ, बदल जायगा वह सुन्दर रंग, और अन्त हो जायगा इस कठोर कोमलता का। यह रंग-बिरंगी पँखुड़ियाँ सूख-सूख कर पृथ्वी-तल पर बिखर जायँगी और यहाँ रह जायगी केवल वह 'अपत कटीली डार'।

दस

उसका कारण

पुष्प ने वृक्ष से नाता तोड़ा, अपने प्रेमी भ्रमरों को छोड़ा, सुकोमल हरे-हरे पत्तों की सेज छोड़ी; यही नहीं, तीखे काँटों को, जो उसके रक्षक थे, उन्हें भी छोड़ दिया।....और यह सब इसी आशा में कि आराध्यदेव के गले का हार बनेंगे, या उसके पूज्य चरणों में चढ़ेंगे।

किन्तु आशा पर पानी फिर गया। उन्हें गले लगाने से हिचके,.... उसके लिए पुष्प को बिंधना पड़ेगा। और चरणों में भी स्थान नहीं मिला....उस सुकोमल पुष्प को पैरों में डाला जाय! उन्हें क्या मालूम था कि जिन्हें वे निष्ठुरताएँ समझ बैठे थे, उनसे भी बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को वह सहन कर चुका था।....किन्तु नहीं....ऐसी साधारण-सी बातों का विचार करने में वे उसकी सारी आशाओं को ही कुचल बैठे।

और अपनी आशाओं को दिल में छिपाये ही वह पुष्प सूख गया। यह देखकर कि आराध्यदेव उसे ऐसे साधारण बलिदान के योग्य भी नहीं समझते, उसने अपने भाग्य को कोसा, वह दिल मसोस कर रह गया और इसी दुःख के मारे वह मुरझा गया।

ग्यारह

दो बातें

दीपक से पूछा—अपना सिर क्यों धुन रहे हो ?

उसने उत्तर दिया—अपने दिल की जलन के मारे, अपने प्रेमी पतंगे की मूर्खता को देख तथा उसे जलने से बचाने में अपनी विवशता पर।

दीपक ने पूछा—कितनी आशाओं, उमंगों के साथ पतङ्ग तुमसे गले लगने को आता है, अपने शरीर की सुध-बुध भूलकर तुमसे चिपटता है। और उसके प्रगाढ़ प्रेम का उत्तर तुम उसे जलाकर देते हो। अपने प्रेमी के प्रति तुम्हारा यह बर्ताव !

उत्तर मिला—जो वस्तु अपनी हो, जिसे कोई व्यक्ति अपने हृदय से लगाता हो, वही अपने प्रेमी को भेंट की जाती है। मेरा स्नेह !—वह कभी का जल चुका ; और अपना शरीर !—वह बत्ती कभी की झुलस चुकी। मेरे पास रह गई है—केवल दिल की जलन। यही एक वस्तु है, जो मेरी अपनी है। उसे गले लिपटाये हुए हूँ, दिल में छिपाये हूँ ; अतएव इसके सिवा मेरे पास कोई दूसरी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे मैं अपने प्रेमी को दे सकूँ।

बारह

निराशा

पतंगे ने रोकर पूछा—आज यह नक़ाब अपने उज्वल मुख पर क्यों डाले हुए हो ?....अरे, इससे तो तुम्हारा चमकता हुआ चेहरा छिपता भी नहीं है !

कितनी आशाओं से आता हूँ ! कितनी उमंगें हृदय में उठती हैं, तुमसे मिलने को....तुम्हें गले लगाने को....,किन्तु यह कठोर निष्ठुर नक़ाब....अपने बीच में यह पर्दा...., नहीं....नहीं....,अधिक अच्छा होता, यदि यह नक़ाब सचमुच पर्दा होता। वह पारदर्शी न होता। किन्तु...

पतंग उस शीशे पर, उस पारदर्शी नक़ाब पर टकराकर गिर पड़ा, बेहोश हो गया....। और जब होश आया....दीपक बुझ चुका था, उसकी झिलमिलाती लौ विलीन हो चुकी थी। स्नेह का अन्त हो गया था...., अब रह गई थी वह अधजली काली सूखी बत्ती। चारों ओर कालिमा और वही कठोर पारदर्शी नक़ाब।

तेरह

दुराशा

निरन्तर उमड़ती हुई तरङ्गों पर श्वेत फुहारों के मुकुट से सुशो- : अपना वह मस्तक उठाकर किसकी ओर तू आशा-भरी लालायित दृष्टि से देखता है ?

किसको सुनाने के लिए तू चिरकाल से अपना वह अमर संगीत गा रहा है ?

किसके कठोर हृदय को लुभाने के लिए तू मर्मर ध्वनि में दर्द-भरी तान गा-गाकर अपनी हृदय-व्यथा की यह कथा कह रहा है ?

और किसे देखकर तू दिन-रात समय-कुसमय अपना आत्म-सम्मान भूलकर उमड़ पड़ता है ?

किसके स्मरण-मात्र से तेरे प्रशान्त वक्षस्थल पर छोटी-मोटी सुन्दर तरंगें उठती हैं और जिन पर तेरी मनोसुन्दरी नृत्य करती है ?

और किसको मनाने के लिए तेरा व्यथित हृदय अनेक बार एक-बारगी शान्त हो जाता है, और तू नत-मस्तक होकर अपनी नीली चादर में मुँह छिपाये प्रेमिका की ओर चुपके से खिसकने लगता है ?

किन्तु...!

अरे ! तू शताब्दियों से उसके द्वार पर आवाज़ दे रहा है ; पर तेरी कौन सुनता है ? उन कठोर किनारों पर—उन नुकीले कगारों पर—तू अपना सिर टकरा-टकरा कर रह जाता है ; किन्तु किसे इसकी परवाह है ?

उस चमकने वाले चाँद को देखकर तू दौड़ पड़ता है, उस तपाने वाले सूर्य की ओर अनजाने आकृष्ट हो जाता है; किन्तु उन तक पहुँचना.....? अरे ! यह सूरज और चाँद तो तुझे छेड़ने के लिए ही हैं। उनकी ओर ताकता हुआ तू पागल की नाईं दौड़ रहा है; किन्तु पृथ्वी के उस कठोर भूमि-तल से लिपटने में जब उन उन्नत चट्टानों से टकराकर तेरा सिर-छिन्न-भिन्न हो जाता है और सैकड़ों कणों में चूर-चूर होकर छितर जाता है, तब कहीं तुझे पता लगता है अपनी विवशता का...और फिर बेहोश विह्वल धीरे-धीरे पुनः उस अगाध गह्वर में ढुलक पड़ता है।

और उस पाषाण-हृदया को लुभाने का प्रयत्न...वह भयंकर दुराशा....अरे ! उसने तेरी आहों को चुराया, तेरे आँसुओं को सुखाया, तेरे वाष्प-बिन्दु तुझसे छीन लिये और तेरे दिल के लहू को निचोड़कर अपने पट को रँग डाला....किन्तु...फिर भी...। अरे ! उसने तेरी ओर दृष्टि तक न डाली। तेरी आशाओं को चूर-चूर कर डाला, तेरे नत-मस्तक को ठुकराया और तेरे सारे प्रयत्नों का वह उत्तर....वह तो मुँह फेरे बलखाती ही जाती है।

परन्तु...

वह दुराशा...उस चिर-प्रेमी सागर ने इस बड़वानल को, चिन्ता की इस दुर्दमनीय अग्नि को, प्रेम-रस से पूर्ण अपने अगाध हृदय में डुबो दिया...., और....आज भी निराशा की काली घनघटा में आशा की झलक देखने को वह एकटक दृष्टि लगाये बैठा ताक रहा है।

चौदह

बिखरे फूल

वे प्यारे-प्यारे फूल ! मेरे हृदय-हार में गुँथे हुए थे, प्रेम के अदृश्य सूत्र में बँधे थे, और खिलते हुए यौवन की मस्तानी सौरभ फैला रहे थे।

अपने आराध्यदेव के चरणों पर उस हृदय-हार को चढ़ाने के लिए चला। अपने हृदय की रक्तिम लाली में उन पुष्पों को रँगा था। गये-बीते दिनों की मधुर स्मृतियों को एकत्र करके उन पुष्पों में सुमधुर रस का संचार किया और अपने यौवन की मस्ती को लेकर उनमें मादकता भर दी। और अपने इन प्यारे पुष्पों को बिंधने का भी कष्ट न हो, इसी कारण उन्हें प्रेम-सूत्र में बाँधा।

पागल की नाईं उन्मत्त, भावावेश से झूमता हुआ, मैं इस हृदय-हार को लेकर निकला था। किन्तु.....?.....कल्पना और भावों की उलझन में वह सूत्र टूट गया, और.....आह ! नहीं स्मरण कर सकता, उस भयानक क्षण की स्मृति को। मेरे हृदय के वे टुकड़े बिखर पड़े और भौतिक जगत् की वह आँधी न जाने कहाँ-कहाँ उन्हें उड़ा ले गई।

क्या-क्या आशाएं थीं ? कितनी उमंग थी ? अपने हृदय की एक-मात्र इच्छा को पूर्ण होते देखकर....अपने ही स्वप्न-लोक में उड़ा जाता था; किन्तु टूट गया वह हृदय-हार और बिखर गए वे फूल।

बरसों की तपस्या के बाद अपने संचित भावों को ही अर्पण करने चला था; किन्तु टूट गया वह हार और लुट गया वह मेरा सारा वैभव-कोष। मेरे पास कुछ भी न रहा। किन्तु आराध्यदेव के चरणों में कुछ चढ़ाना ही होगा। अब किससे कुछ मांगने जाऊँ ?

और कुछ नहीं, तो अपने इन बिखरे फूलों को ही क्यों न समेट लूँ। वह प्रेम-सूत्र यद्यपि टूट चुका है, किन्तु फिर भी उन पुष्पों में मेरी स्मृति का सौरभ विद्यमान है। वे फूल, यद्यपि मुरझा गए हैं, फिर भी अपने लुटाये हुए यौवन की मस्ती उनमें बस रही है। अपने इन बिखरे हुए फूलों को समेटते समय न जानें कितनी पुरानी स्मृतियाँ जागृत हो उठती हैं—अपने उस पुराने स्वप्न-लोक की स्मृति आती है, हृदय में एक उथल-पुथल मच जाती है ; किन्तु....विवश हूँ।

उन बिखरे फूलों को बटोरता हूँ और अपने विफल मनोरथ तथा भग्न आशाओं पर बहाये गए आँसुओं से उन्हें धोकर, अपने हृदय-जल से सींचकर उन्हें पुनः हरा करने का प्रयत्न करता हूँ; किन्तु नहीं.....यह कैसे होगा ? सब कुछ लुट चुका, फिर भी यह मोह ! अपने हृदय-हार के इन अवशेषों को, इन छिन्न-भिन्न अकाल में मुरझाये हुए, अधखिले पुष्पों को, अपने निःश्वास से झाड़कर समेट लूँ। एक बार अपने हृदय से लगाकर जी भरकर रो लूँ और फिर अपनी रही-सही सम्पत्ति को भी लुटा दूँ। चढ़ा दूँ इन बिखरे फूलों को और बहा दूँ अपने आँसुओं को उन चरणों पर और फिर.....भूल जाऊँ अपने उस टूटे हुए हृदय-हार को और अपने इन बिखरे फूलों को।

पन्द्रह

आशा

बूढ़ी दुनिया का बचपन था। मानवों की पहली ताक़-झांक थी। आदम और हौवा इस पार्थिव जगत् में अनजाने ही आ पहुँचे थे। उन प्रारम्भिक स्त्री-पुरुष में प्रथम बार प्रेम का संचार हुआ, उस अंधकार-पूर्ण अनंत आकाश के नीचे, उन टिमटिमाते हुए अनगिनत दीपों की ज्योति में प्रणय-कहानी प्रारम्भ हुई। उसका कहीं-न-कहीं अंत होना अवश्यंभावी था।

मानव-प्रेम का वह प्रारम्भ, जीवन के साथ वह अनोखा खिलवाड़; प्रेम का क्षणिक अन्त, प्रणय का भंग होना,.....टूट गए वे कोमल हृदय, उमड़ पड़े वे आँसू, निकल पड़ीं उनकी वे तपतपाती हुई उसासें....वे व्यथित, विरह-पीड़ित व्यक्ति पड़े सिसकने लगे। रँग दिया उन्होंने संध्या के उन उजाले बादलों को अपने हृदय के रुधिर की लाली से, भस्मसात करने लगे उस तपतपाए सूर्य को वे अपनी आहों से, जिससे विचलित होकर वह पश्चिमी सागर में डुबकी लगाने दौड़ पड़ा। और, अपने उन उमड़ते हुए आँसुओं से संसार को अंधकार में लुप्त कर दिया, प्रकाशपूर्ण शुभ्र दिवस दुर्दिन हो गए। परंतु ....उस निराशा की कालिमा में प्रगट हुई वह ज्योति। उस रक्तिम अँधियारे आकाश ने शांत, शीतल चाँदनी को जन्म दिया। अमावस्या की उस काल-रात्रि में चमकने लगी आशा की वह एकमात्र उज्वल रेखा। दुःखित मानव-हृदय ने बाल-चंद्र को देखकर नवीन सुख का

अनुभव किया, और उसकी आभा, भोली-भाली अज्ञात आशा—वह तो मानव-जीवन का एकमात्र आसरा बन गई।

किंतु... आत्मसमर्पण करके भी मानव उस निरीह आशा को नहीं बूझ सका, उसे गले लगाकर भी वह अपने गत बीते कटु अनुभवों को नहीं भूल सका। उस आशा में भी निराशा थी, उस शीतलता में जलन थी, और उस सुख में थी गये-बीते प्रेम की कसक। और....उनका उपाय....सबको भुला देने वाला, सब दुख-दर्दों का अन्त करने वाला, तथा कठोर-से-कठोर चोटों के भयंकर दर्द को मिटानेवाला एकमात्र समय ही था। परंतु इतनी दुखपूर्ण देरी, वह प्रचण्ड प्रतीक्षा...यह समय तो आशा के सहारे ही बीत सकता है। मानव ने उसे गले लगाया, अपने टूटे हुए हृदय तथा भग्न प्रेम के उन विदीर्ण स्थानों पर विस्मृति की ठंढी पट्टी चढ़ाई, और तब....समय आप ही आप धीरे-धीरे भूतकाल के गंभीर गह्वर में ढुलकने लगा।

उसी दिन से मानव आशा को हृदय से लिपटाए, गले लगाए फिरता है। सब कुछ सहता है, किन्तु.....उसको नहीं छोड़ता।.... और आशा....वह तो मानव की विलग न हो सकने वाली ऐसी छाया बन गई कि निराशापूर्ण अंधकार में भी उसका साथ नहीं छोड़ती।

सोलह

पथिक ! क्या रात-भर भी न ठहरोगे ?

काँपती हुई झीनी आवाज़ में कोई पूछता है—"पथिक ! क्या रात-भर भी न ठहरोगे ?"

सागर की तरंगे टकरा-टकरा कर लौट जाती हैं,

तूफ़ान उठ-उठकर शान्त हो जाते हैं,

समय अनजाने खिसका जाता है,

सूरज आँखों में लाल-लाल गुलाल झोंककर भाग जाता है,

चाँद भुलावा देकर प्रियतमा के पास जा पहुँचता है,

बादल रो-रोकर ज़मीन-आसमान एक कर देते हैं,

बिजली प्रकट होकर शर्मा जाती है, अपनी काली चादर में पुनः जा छिपती है,

तारे टिमटिमाकर रह जाते हैं,

हवा अठखेलियाँ करती है,

बचपन खिलखिलाकर सो जाता है,

यौवन झूमता हुआ चला जाता है,

बुढ़ापा काँपता हुआ विश्राम लेता है,

सुख आँसुओं की राह बह निकलता है,

दुःख हिचकियों के सहारे आ पहुँचता है,

और धड़कता हुआ दिल उत्सुकतापूर्वक फिर पूछ बैठता है—

"पथिक ! क्या रात-भर भी न ठहरोगे ?"

जगमगाते हुए चाँद-तारों वाली चादर का चंदोवा आसमान में ताना,

बिजली ने चमककर उसे आलोकित किया,

हवा ने पत्ते-पत्ते से चिर-संगीत उत्पन्न किया,

अपनी कुटिया में स्नेह दीपक जलाये,

तुम्हारा स्वागत करने के लिए बहुत काल से कोई द्वार पर प्रतीक्षा कर रही है;

पथिक ! क्या फिर भी रात-भर न ठहर सकोगे ?

तुम्हारे स्वागत के लिए सब साज सजाए थाली में धूप-दीप लिये कोई खड़ी है !

चन्दन, अक्षत और बिन-बिंधे मोती के दानों से एकान्त में पूजा करने की साधना आज पूरी होने को है,

पद-कमलों पर चढ़ने को कलियों की टोकरी भरी पड़ी है। दिनभर मंडरा-मंडराकर भी जब उन तक न पहुँच पाये तो थककर भ्रमर चल दिये। वे कलियाँ पवित्र होने को उत्सुक हो रही हैं; शुभ घड़ी आई जानकर अब तो वे भी खिल उठी हैं।

अमावस्या की कालिमामयी चादर ओढ़े इस गोधूली में अनजाने ही तुम आ पहुँचे हो,

चिरकाल से यह तारकमय साड़ी ओढ़े तुम्हारा स्वागत करने को कोई खड़ी है,

इस महा-मिलन के उपलक्ष में उसने रोम-रोम में दीपक जलाये हैं !

पथिक ! क्या रात-भर भी न ठहरोगे ?

क्या अपना चाँद-सा उज्वल मुखड़ा भी न दिखाओगे ?

क्या एक नज़र भी इधर न देखोगे ? पथिक ! क्या रात-भर भी न ठहरोगे ?

सत्रह

इस अँधेरी रात में किधर चले ?

"पथिक ! इस अँधेरी रात में किधर चले ? क्या रात-भर भी न ठहरोगे ?"

"दिनभर भटकने के बाद थके-माँदे आये हो, सूरज की धूप में तपे हो; अरे !....थकावट भी न उतरी कि इस बरसते पानी में रवाना होने लगे !

देखो ! चाँद ने मुँह छिपाया सो छिपाया, तारे भी तुम्हारे पथ को आलोकित करने को नहीं झांकते !

क्या इस अँधेरी रात में चल ही पड़ोगे ? अरे ! बेचारे बादल भी रो-रोकर तुम्हारी राह रोक रहे हैं।

क्या फिर भी न सुनोगे किसीकी ?"

"पथिक ! रात-भर तो विश्राम ले लो। सुस्ता लेते, कुछ खा-पी लेते, फिर सुबह बड़े तड़के चल देते।

झोंपड़ी में स्नेह-भरा दिया टिमटिमा रहा है, इस कुटिया को आलोकित करने का प्रयत्न कर रहा है।

सुलगती हुई आग इस भीगी रात में कितनी सुहावनी जान पड़ती है !

और, रात-भर ओढ़कर गरम-गरम बिछौने में पड़ रहना !

अरे ! तुम्हारा स्वागत करने को इस कुटिया के द्वार पर आँखें बिछी हुई थीं। क्या पथिक ! तुम इन सबको कुचलते हुए चल दोगे ?"

"चल दोगे ! चल दोगे !

परन्तु क्या कोई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है ? इस अंधेरी रात में, बरसते पानी में, तुमसे मिलने को कौन तुम्हारी बाट देख रहा होगा ?

चाँद भी तो अपनी प्रियतमा के अंचल में मुँह छिपाए सोया है, तारे भी बादल की झीनी चादर ओढ़े विश्राम कर रहे हैं।

नहीं !....तो क्या तुम्हें इन मेंढकों की टरटराहट प्यारी जान पड़ती है ?

किसी प्रियतमा की सुध आ रही है, क्या ?

और अगर चाहोगे, तो एक-आध गान भी सुना दूँगी तुम्हें।"

"आखिर जा कहाँ रहे हो ?

इन आँसुओं के खारे सागर को भी तुम पार करोगे ! क्या तुम्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती है ?

टूटे दिलों के रुधिर के इस लाल सागर में होकर जाते समय भी तुम्हारा दिल उद्विग्न न होगा ?

भावों का उठता हुआ बवंडर, वह तूफ़ान, आँसुओं का वह उद्वेलित सागर भी क्या तुम्हारे मार्ग में बाधक न हो सकेंगे ?

तो क्या इस वर्ष बरसात में ही शरद् की रात आरम्भ हो गई है ?

और वहाँ तो अँधेरा-ही-अँधेरा है। पथिक ! तुम्हीं बताओ किस दिल में अँधेरा नहीं है ?

रोती हुई आँखों की कालिमा ने फैलकर ही सब ओर यह अँधेरा छा दिया है। क्या इसीसे आकृष्ट होकर तुम्हें यह अँधेरा प्रिय हो उठा कि उसी में लीन होने को व्यग्र हो उठे हो ?

क्या यहाँ अँधेरा कम है ? इस दिये से भी तो अँधेरा बढ़ता ही जान पड़ता है !"

"हाँ !....सो क्या ?

तुम मेरी इस श्यामल चादर पर ही खेलोगे न,

मेरी इन श्वेत फेनिल तरङ्गों में ही क्रीड़ा करोगे,

इस अंचल के पट पर बिखरे हुए इन फूलों-पत्तों में आँख-मिचौनी खेलने की तो तुम्हें खूब सूझी !

मेरी इस सुन्दर सुगन्धित वाटिका में ही तुम अपना दिल बहलाओ न !....तो तुम किसी भी प्रकार न ठहरोगे ?"

"परन्तु क्या तुम कभी लौटकर भी फिर यहीं मुझसे मिलोगे ?

इस अँधेरी रात की कालिमा में रंगकर कहीं श्याम न हो जाना कि तब पहचाने न जा सको।

और, इस बरसात में भीगकर अपने दिल की गर्मी न खो बैठना; यह सरसराती हुई हवा उसे ही तो चुराने का प्रयत्न कर रही है।

प्यारे ! दादुरों की यह टरटराहट....कहीं इनके भुलावे में न पड़ जाना; ये तो हर साल यों ही मर-मरकर जीवित होते रहते हैं, गला फाड़कर टर्राते और अपने इस निरन्तर पुनर्जन्म पर इतराते हैं ! नदी के तीर पर चकवा-चकवी की चीख तुम्हें रुला न दें; उन बेचारों के भाग्य में तो सुख लिखा ही नहीं है, और साथ ही तुम्हारे वे आँसू तुम्हें भी राह से भटका न ले जावें।"

"तो पथिक ! तुम किसी की भी न सुनोगे ? अच्छा जाओ—

परन्तु राह में दलदल हो रही होगी, कहीं काँटे भी बिखरे पड़े होंगे, तुम्हें राह कौन बतावेगा ?

अरे ! बिजली भी तो नहीं चमकती, क्या वह भी शर्मा कर बादल की ओट हो गई या बेहोश पृथ्वी की गोद में जा पड़ी ?"

"पथिक ! इस अँधेरी रात में किधर चले ? क्या रात भी न ठहरोगे ? सुबह होने पर चले जाना। एक बार तो सोच-विचार लो।"

अट्ठारह

परदेसी ! तुम क्या जानो प्रीत की रीत ?

संध्या से ही आशा का स्नेह-दीप जलाये राह देख रही हूँ। स्वागत करने को खिले हुए सुन्दर फूलों का हार भी गूँथा था। मेरे आशा-दीप की उस जीवन-ज्योति में न जाने कितने आये और अँधेरे में न मालूम कहाँ विलीन हो गए। मेरे उस हार को न जाने कितनों ने प्यासी चितवन से देखा। परन्तु तुम न आये।

मेरा आशा-दीप जल-जलकर बुझ गया। मोह के धागे में बँधे वे प्यारे सुमन भी मुरझा गए। उन पर मंडराने वाले वे पतंगे और भौंरे भी कब से निराश होकर लौट गये। मैं अकेली बैठी चुपचाप अँधेरे में ताकती रही। माया के आवरण-सा यह अँधकार तो निरंतर बढ़ता ही गया।

परदेसी ! सपनों की तरह उस निद्रापूर्ण अंधकार में न जाने तुम कब आये और उजेला होने से पहले ही चल पड़ने को अब तैयार हो गए। प्रभात के समय चारों ओर उजेला होगा, परन्तु मैं तो इन घड़ियों की इस अँधेरी याद में ही अपने सपनों को टटोलूँगी और उन्हीं से अपना दिल बहलाऊँगी। अपने इन प्यारे अँधियारे सपनों को भुलाकर मैं तुम्हें कहाँ पा सकूँगी ?

परदेसी ! कहाँ चले जा रहे हो ? इसका भी पता नहीं है। फिर किधर को चल पड़े ? दुर्दिन के आँधी-पानी का खिलवाड़, धूल और पत्थर की मार सह सकोगे ? एकमात्र चिर-संगिनी छाया भी तो

तब तुम्हारे साथ न होगी !

तुम अकेले हो ! न जाने कब तक कहाँ-कहाँ भटकना होगा ? तुम्हें साथी चाहिए ! कैसा साथी चाहते हो ? कहते हो कि साथी नहीं मिलता ! तुम तो उसे सूरज और चाँद के उजियारे में ढूँढते हो न ? स्नेह-दीप लेकर अपने दिल के अँधेरे कोने में भी कभी उसकी खोज की है ?

परदेसी जो ठहरे; रात-भर का बसेरा और अँधेरे-अँधेरे ही चुपचाप अपनी राह ली ! क्या जानो किसी के दिल की टीस ? कभी यह भी सोचा कि कहीं कोई राह देखता होगा, साथ देने को तड़प रहा होगा, क्षणिक मिलन की याद से ही अपना दिल बहलाकर रह जाता होगा !

कुछ ही घड़ियों बाद प्रभात आवेगा और आकाश में टँगे हुए चिरप्रेमियों के उन स्नेह-दीपकों को वह ठुकरा कर बुझा देगा। तुम भी तो न जाने कितने आशा-दीपों को कभी से बुझाये बैठे हो ? स्नेह-भरी कितनी प्यालियों को तुमने भी तो अनजाने ठुकराया है !

"परदेसी ! तुम क्या जानो प्रीत की रीत ?"